धम्मपद
वर्ग 8 ~ 14
गाथा और कथा
संस्कारक : हृषीकेश शरण
VOL. 2

धम्मपद

वर्ग 8 ~ 14

गाथा और कथा

लेखक एवं प्रकाशकः
हृषीकेश शरण
इस्ट ऐंड अपार्टमेन्ट्स
ब्लॉक - VI, फ्लैट नं 103
मयूर विहार, फेज़ - I एक्सटेन्शन
दिल्ली - 110 096
मोबाईलः 9871212294
ई-मेलः hsharan@hotmail.com

संस्करणः
मई, **2010**

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
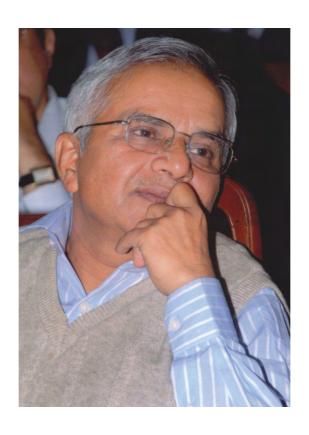
ह्षीकेश शरण

जन्म बेतिया, पश्चिम चंपारण, बिहार। पटना विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। 1975 में भारतीय राजस्व सेवा (केन्द्रीय उत्पाद् शुल्क एवं सीमा शुल्क) में प्रवेश किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और ऑपरेशनल रिसर्च सोसाइटी आफ इण्डिया से ऑपरेशनल रिसर्च में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा प्राप्त किया। 1994 में कैलास मानसरोवर यात्रा के यात्री दल का नेतृत्व किया। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया। विभिन्न पदों पर आसीन रहने के बाद इन दिनों कोलकाता में मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर के पद पर कार्यरत हैं।

पिछले 33 वर्षों से बुद्ध की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। कालेज के दिनों से ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। बुद्ध के जीवन एवं शिक्षा, होलिस्टिक मैनेजमेन्ट एवं अन्य विषयों पर संपूर्ण भारत में व्याख्यान देने के अलावा युगाण्डा, केन्या, तंजानिया, जाम्बिया, निदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर एवं भूटान में भी व्याख्यान दे चुके हैं।

2007 में सर एडविन ऑरनाल्ड की पुस्तक "लाइट आफ एशिया" का हिन्दी अनुवाद "जगदाराध्य तथागत" के रूप में किया। कैलाश मानसरोवर यात्रा पर संस्मरण भी लिखा है। संपूर्ण सचित्र धम्मपदः गाथा एवं कथा के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया के तत्वाधान में दिनांक 9 मई 2009 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन किया जा चुका है।

समर्पण

दादाजी - स्व० राघव शरण जी

दादीजी - स्व० विंध्याचली देवी

पिताजी - स्व० शम्भू शरण जी

माताजी - स्व० शकुन्तला देवी

यह पुस्तक समर्पित है मेरे परम पूजनीय स्व० दादा एवं दादीजी और पूजनीय स्व० माता-पिताजी को, जिनकी सदाशयता एवं कुशल मार्ग दर्शन ने मेरे जीवन को प्रभावित और प्रेरित किया।

आमुख

थेरवादी परंपरा के अनुसार संसार से मुक्ति पाने की तीन धाराएं हैं :-

(1) सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति

(2) पच्चेक बुद्ध की प्राप्ति

(3) अरहंत की प्राप्ति

उपर्युक्त तीन धाराओं में से सर्वज्ञ बुद्ध होना आसान नहीं है। यह सबसे कठिन है। दस पारमिता, दस उपपारमिता, दस परमत्तपारमिता, साराशंक्य, कल्प, लक्ष्य से भी अधिक संसार में दान, शील, नैशक्रम्य, प्रज्ञा आदि दस पारमिता पूरा करने के बाद ही सर्वज्ञ बुद्ध प्राप्ति संभव है। बुद्ध वंश की कथा के अनुसार बोधिसत्व ने महासागर में विद्यमान जल से भी ज्यादा रक्त दान दिया है। आसमान में विद्यमान तारों से अधिक नेत्रदान दिया है, महापृथ्वी की मिट्टी से ज्यादा मांस दान दिया है। इन कहानियों का उल्लेख बुद्ध वंश कथा एवं जातक कथाओं में मिलता है।

सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति के लिए संसार में अनेक योनियों में विविध रूपों में जन्म लेना पड़ता है। दुनिया के अनुभवों से अनेक छोटे-बड़े पुण्य प्राप्त करने होते हैं। ठीक इसी प्रकार छोटे-बड़े पापों के अनुभव भी प्राप्त करने होते हैं।

बुद्ध सर्वदा दूसरों का हित ध्यान में रख उपदेश दिया करते थे। एक बार एक प्रज्ञ पण्डित ने बुद्ध से पूछा, "शाक्य मुनि, मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। यदि आप अनुमति दें तो मैं प्रश्न करूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम मुझ से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हो।" तदुपरान्त ब्राह्मण ने बुद्ध से प्रश्न किया, "आपके द्वारा धर्मदेशना देते समय आपके श्रीमुख से कमल की सुगंध निकलती है, इसके पीछे क्या कारण है ?" बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, बुद्धत्व प्राप्ति के लिए संसार में व्याप्त छोटे-बड़े सभी पाप-पुण्य करना जरूरी है, केवल एक पाप को छोड़कर।" "यह पाप क्या है, तुम जानते हो ? " ब्राह्मण ने कहा, "हमें इसकी जानकारी नहीं है।" बुद्ध ने कहा, "यह पाप है झूठ या असत्य बोलना। झूठ या असत्य बोलना एक ऐसा पाप है जिसके गर्भ में सभी पाप छिपे हुए हैं। इस दुनियाँ में कोई भी व्यक्ति

कभी भी, किसी भी समय, किसी के साथ, कहीं भी छोटा-बड़ा पाप कर सकता है। बोधिसत्व में जन्म लेने के उपरान्त मैंने मुख से कभी भी झूठ नहीं बोला। इसीलिए उसी शक्ति से मेरे मुख से कमल की सुगंध निकलती है।"

कमल की सुगंध वाले बुद्ध वचनों को हम लोग बुद्ध-देशना कहते हैं। आगे चलकर इस बुद्ध-देशना को तीन भागों में बाँटा गयाः सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक और विनयपिटक - । "धम्मपद", सुत्तपिटक के 'खुद्धक निकाय' के अन्तर्गत आता है। 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत 19 ग्रंथ हैं और इन ग्रंथों में एक ग्रंथ है- "धम्मपद"। "धम्मपद" के संगीतिकारक अरहंत भिक्षुओं ने इसे 26 वर्गों में बाँटा है। सनातन धर्म में गीता का जो महत्व है उतना ही महत्व बौद्ध धर्म में "धम्मपद"का है। "धम्मपद" का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। लेकिन लिखने में थोड़ी लज्जा महसूस हो रही है कि विभिन्न भाषा भाषियों वाले भारतवर्ष में 26 भाषाओं में आज भी "धम्मपद" उपलब्ध नहीं है। ग्रीक, चीनी भाषा के क्षेत्र बुद्ध के जन्म स्थान से बहुत दूर हैं फिर भी उन भाषाओं में "धम्मपद" उपलब्ध है।

श्री हृषीकेश शरण, मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद् एवं सीमा शुल्क, कोलकाता, भारत सरकार के एक उच्च पदस्थ पदाधिकारी हैं। इतने बड़े पदाधिकारी होने के बावजूद धर्म के प्रति उनका लगाव अति प्रशंसनीय है। हमें पूरा विश्वास है कि श्री शरण द्वारा हिन्दी भाषा में संपादित सचित्र "धम्मपदः कथा और गाथा" का "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" धर्मप्रिय सभी पाठकों की मानसिक पीड़ा को दूर करने में एक महान सोपान के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया की तरफ से इस सद्धर्म कार्य के लिए श्री एच. के. शरण तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों एवं इस काम के लिए तन-मन से जिस किसी ने भी मदद दी हो, उन सभी को त्रिरत्न से दीर्घायु, निरोगी, सर्व सम्पत्ति एवं सुखी जीवन हेतु प्रार्थना करता हूँ।

डॉ. डी. रेवत् थेरो
महासचिव
महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया

4ए,बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,कोलकाता 73
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

प्रस्तावना

मई 2006. अभी तक मैंने जगदाराध्य बुद्ध की अमर कृति "धम्मपद" को कभी छुआ नहीं था, खोलने और पढ़ने की बात तो दूर की थी। कारण- लोग कहते थे कि पाली भाषा में होने के कारण बुद्ध की शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन है। दूसरे, बौद्ध साहित्य पढ़ने से हतोत्साहित करते थे क्योंकि अधिकांश लोगों की सोच थी कि बौद्ध साहित्य पढ़ने वाला बुद्ध की तरह संन्यासी हो जायेगा; गृहस्थ धर्म नहीं निभा पायेगा। सलाह देने वाले डराते थे और सलाह ग्रहण करने वाला, जिनमें मैं भी शामिल था, डरता था कि कहीं गेरुआ वस्त्र तो धारण नहीं कर लूँगा? इस डर से कभी "धम्मपद" को छुआ तक नहीं था।

6-8 मई 2006. डॉ. राधा बर्नियर, अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी ने जूनागढ़, गुजरात में "धम्मपद" पर अध्ययन शिविर का संचालन किया। संयोगवश मुझे भी उसमें भाग लेने का मौका मिला। वहाँ जब मैंने प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" में 'मन की महत्ता तथा बैलगाड़ी' और 'मनुष्य की छाया' का उदाहरण सुना तो "धम्मपद" के संदेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। "वैर का बदला वैर से नहीं चुकाया जा सकता; इसे प्रेम, दया, करुणा और मैत्री से ही समाप्त किया जा सकता है।" - यह गाथा तो हृदय के अंदर उतर गई। "धम्मपद" से लगाव हो गया।

उन दिनों श्री जितेन्द्र चतुर्वेदीजी, आयुक्त, जयपुर के सौजन्य से पता चला कि "धम्मपद" के प्रत्येक गाथा के पीछे एक कथा है। उनकी मदद से पूरी कथा को वेबसाइट से उतार लिया गया और कहानियों को पढ़ने में मुझे आनंद आने लगा। साथ ही मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह इतना प्रेरणादायक, सारगर्भित सद्साहित्य है; कहीं हिंदी का पाठक इससे वंचित तो नहीं है ? यह सोचकर मैंने हिंदी में अनुवाद करना प्रारंभ कर दिया। उद्देश्य था कि अपने व्याख्यानों में इन कथाओं तथा गाथाओं को उद्धृत कर सकूँ।

पदोन्नति पर जुलाई 2007 में जयपुर से कलकत्ता स्थानान्तरण हो गया। 2008 में "महाबोधि सोसाइटी" के महा सचिव, डॉ. रेवत् भन्ते जी से परिचय हुआ। उनसे पता चला कि हिंदी में भी "धम्मपद : गाथा और कथा" प्रकाशित हो चुकी है। मैंने प्रयत्न कर श्री ताराराामजी द्वारा लिखित पुस्तक की प्रति प्राप्त कर ली और जून 2008 में उसे पढ़ गया।

"धम्मपद" में मेरी रुचि जानकर महाबोधि सोसाइटी, सारनाथ के भिक्षु प्रभारी, डॉ. सुमेध भन्ते जी ने परम आदरणीय भिक्षु सारद महा थेरो जी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित "ट्रैजरी ऑफ ट्रूथ", "सचित्र धम्मपद" की प्रति पढ़ने के लिए दी। इस पुस्तक में दाहिने पृष्ठ पर गाथा से सम्बन्धित कथा तथा बाँये पृष्ठ पर उससे सम्बन्धित चित्र, गाथा और उसका अर्थ दिया हुआ है। इस पुस्तक को भी मैं पढ़ता गया, पढ़ता गया। आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हुई। अन्त में मन में आया कि क्यों न इसी प्रकार की एक पुस्तक हिन्दी में लिख दी जाए जिसमें कथावस्तु दाहिनी ओर हो और तस्वीरें बाईं ओर। भन्ते सारद जी से अनुमति ले तस्वीरों को प्रकाशित किया जाय। मैंने इस कार्य को दिसंबर 2008 में प्रारंभ किया और 31 मार्च 2009 तक संपन्न कर डाला।

इस बीच डॉ. रेवत् भन्ते जी से विचार-विमर्श हुआ कि क्यों न "बुद्ध पूर्णिमा" के पावन अवसर पर "धम्मपद" के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन किया जाए। उन्होंने इस दिशा में कदम उठाया और "बुद्ध पूर्णिमा 2009" के कार्यक्रम में इसे शामिल कर लिया। इस प्रकार ये दोनों पुस्तकें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

जनवरी - फरवरी 2009 में मुझे दो बार बोधगया जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और सिंहली भाषा के मूर्धन्य विद्वान भन्ते ज्ञानानंद जी से परिचय हुआ जिनकी जनसाधारण के लिए सिंहली भाषा में लिखी बौद्ध साहित्य की चार करोड़ से भी अधिक मूल्य की पुस्तकें बँट चुकी हैं। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक सुझाव दिए,

गाथाओं एवं अध्यायों का शीर्षक चुनने में मेरी मदद की। इससे मेरा काम आसान हो गया। उन्होंने श्रीलंका में अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि वे आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि में "धम्मपद" के प्रत्येक अध्याय का मुखपृष्ठ बनाकर भेजें। मैं श्री ज्ञानानंदजी एवं उनके शिष्य श्री ज्ञानविजयजी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस लेखन की प्रक्रिया में डॉ. रेवत् भन्ते जी मेरे अग्रज एवं अभिभावक की तरह मुझे प्रोत्साहित करते रहे। अगर उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन नहीं मिलता तो शायद यह कृति संभव नहीं हो पाती।

आज जब मैं विश्लेषण करता हूँ तो देखता हूँ कि बौद्ध-शिक्षा के प्रति समाज में बहुत सारी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इसलिए भारतीय जनमानस बौद्ध-शिक्षा से लाभान्वित होने से वंचित रह गया है। वस्तुतः बौद्ध शिक्षा से अधिक व्यवहारिक और प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध नहीं है। पर यह कहना कि 'भोजन स्वादिष्ट है' पर्याप्त न होगा; अगर हम उस भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं। बौद्ध साहित्य को मात्र पढ़ना और कहना कि 'यह अच्छा है' पर्याप्त नहीं है। इसका सही लाभ उसे ही मिल पायेगा जो उन उपदेशों को अपने जीवन में उतारेगा।

"धम्मपद" की गाथा 51 तथा 52 में इसे ही स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते हैं :-

गाथा 51: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलरहित होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण न करे।

गाथा 52: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त के साथ-साथ गंधयुक्त हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलदायी होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण करे।

आज समाज में सर्वत्र उच्छृंखलता फैली हुई है। उसे दूर करने के लिए बुद्ध के उपदेश से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। **अतः समाज के प्रबुद्ध वर्ग को चाहिए कि वह उन संदेशों को आत्मसात करे तथा समाज के अंदर लगी नफरत की आग को बुझाने की चेष्टा करे।**

बुद्ध चरित्र इतना सुन्दर और विशाल है कि हर आदमी इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सुंदरमय बना सकता है, सँवार सकता है। हर पाठक के जीवन में इस पाठ्य सामग्री द्वारा विमल ज्योति जगे, मेरी यही प्रार्थना है।

मैं अपनी पत्नी श्रीमती मीनू शरण का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने धैर्य रखा तथा प्रोत्साहित किया जिससे मैं यह कार्य सम्पन्न कर पाया। बेटियाँ रूचि, प्रतीची एवं दामाद निशंक- के प्रति भी आभारी हूँ। उन्हें दैनिक जीवन में उतना समय न दे पाया जितना देना चाहिए था पर उन्होंने इस विषय पर कभी शिकायत नहीं की।

हृषीकेश शरण

(हृषीकेश शरण)

कोलकाता
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

हजार बनाम एक
धम्मपद
सहस्त्र वर्ग
गाथा और कथा

हजार बनाम एक

धम्मपद

सहस्त्र वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

सहस्त्र वर्ग

गाथा: सहस्समपि चे वाचा, अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।100।।

अर्थ: निरर्थक पदों से युक्त हजारों वचनों को सुनने की अपेक्षा एक सार्थक पद ही श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर स्थायी शांति प्राप्त होती है।

सार्थक पदों की महत्ता
तंबदाठिक चोर घातक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

तंबदाठिक नाम के एक व्यक्ति ने पचपन वर्षों तक राजा के यहाँ चोर घातक (जल्लाद) के रूप में नौकरी की। समय बीता। वह बूढ़ा हो गया। अब उसके शरीर की शक्ति जाती रही। दो-तीन प्रयास के बाद ही वह अब किसी की हत्या कर पाता था। अतः उसे इस कार्य से सेवा निवृत्ति दे दी गई और उसकी जगह किसी और को रख लिया गया। सेवा निवृत्ति के बाद एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहकर मन पसंद स्वादिष्ट भोजन बनवाया और नदी में स्नान कर, नूतन वस्त्र धारण कर, माला पहन कर तथा शरीर में इत्र एवं सुगन्धि लगाकर घर में आसनी पर बैठ भोजन की प्रतीक्षा करने लगा।

उधर सारिपुत्त ने अपनी ध्यान साधना से उठने के बाद सोचा, "मुझे आज भिक्षाटन के लिए कहाँ जाना चाहिए ?" उनकी दिव्यदृष्टि उस वधिक पर पड़ी। उन्हें लगा कि यह वधिक मेरा स्वागत करेगा और इससे उसका आध्यात्मिक कल्याण भी होगा। अतः यह सोचकर स्थविर उसके घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए।

स्थविर को अपने घर के दरवाजे पर खड़ा देख वधिक ने सोचा, "मैंने जीवन पर्यन्त लोगों की हत्या ही की है। कोई भी भलाई का काम नहीं किया है। आज पहली बार कोई स्थविर मेरे घर के सामने खड़े हुए हैं और मेरे घर में खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन भी बना है। क्यों न मैं स्थविर को यह भोजन कराकर पहली बार पुण्य कमा लूँ ? " ऐसा सोचकर वह अपने आसन से उठा तथा स्थविर को सादर प्रणाम कर उन्हें आदरपूर्वक अंदर लाया और उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त पुण्यानुमोदन प्रारंभ हुआ। वधिक का मन धर्म कथा में नहीं लग रहा था। उसे उसके पुराने कर्म याद आने लगे। वह उद्विग्न होने लगा। तब सारिपुत्त ने पूछा, "उपासक ! तुम्हारा मन धर्म कथा में क्यों नहीं लग रहा है ? " उसने उत्तर दिया, "मैंने पूरे जन्म लोगों का वध किया है और उसी की स्मृति से मेरा मन धर्म कथा में नहीं लग रहा है।" कुछ सोचकर स्थविर ने उससे पूछा, "तुम राजा की आज्ञा से वध करते थे अथवा अपनी इच्छा से ? " "राजा की आज्ञा से।" "तब वध का दोष तुम पर किस प्रकार लगेगा ?" वधिक समझ गया कि वह उस पाप का कारण नहीं था। अब उसका मन धर्म-प्रवचन में लगने लगा। उसका चित्त शांत हो गया और वह स्रोतापत्ति से पूर्व की स्थिति में जा पहुँचा।

धर्म सभा में भिक्षुओं ने आश्चर्य व्यक्त किया कि वधिक का जन्म तुषित लोक में कैसे हुआ ? समझाते हुए शास्ता ने बताया, "भिक्षुओं ! सारिपुत्त के रूप में उसे एक बहुत बड़ा हितैषी मिल गया था। धर्मदेशना सुनकर उसका कल्याण हो गया।

गाथा: सहस्समपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।101।।

अर्थ: निरर्थक पदों से युक्त हजारों गाथाओं की तुलना में एक सार्थक गाथा पद अधिक श्रेयस्कर है जिसे सुनकर स्थायी शांति प्राप्त होती है।

कौन सी गाथा श्रेयस्कर है ?
दारूचीरिय थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय कुछ लोग नाव से यात्रा कर रहे थे। नाव बीच में ही टूट गई और एक आदमी को छोड़कर बाकी सब डूब गए या मछलियों और मगरमच्छों के भोजन बन गए। वह आदमी टूटी नाव के एक तख्ते के सहारे शूर्पारक बन्दरगाह के किनारे आ लगा। लोग उसे देखकर उस पर दया करने लगे, भोजन के रूप में चावल आदि देने लगे। तब किसी ने यह सोचकर कि 'यह कोई सिद्ध पुरुष होगा' उसे शरीर ढँकने के लिए वस्त्र भी दे दिया, लेकिन उस व्यक्ति ने सोचा, "यदि मैं वस्त्र पहनूँगा या शरीर पर कपड़े ओढ़ूँगा तो लोगों की दृष्टि में मेरा मान-सम्मान कम हो जाएगा।" अत: वस्त्रों को धारण न कर वह पेड़ों की छाल से ही तन ढँकता रहा। उसे अब यह गलत-फहमी भी होने लगी कि वह एक 'अर्हत' है। उसका नाम बहुदारूचीरिय पड़ गया।

एक दिन महाब्रह्मा उधर से गुजर रहे थे। उन्होंने उसे देखा तो वे उसके सम्मुख प्रकट हुए और कहा, "मित्र ! तुम तो अर्हत नहीं हो, फिर अर्हत होने का स्वांग क्यों कर रहे हो ? तुम्हारे अन्दर अर्हत होने की संभावनाएं भी नहीं दिख रही हैं। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो बुद्ध की शरण में जाओ। वहीं तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा जिससे तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा।"

दारूचीरिय को अपनी गलती समझ में आ गयी। वह श्रावस्ती जा पहुँचा। शास्ता उस समय भिक्षाटन के लिए निकले थे। वह उनके पीछे लग गया। वह उनसे धर्मदेशना के लिए आग्रह करता रहा। शास्ता ने उसे समझाया कि यह धर्मदेशना का समय नहीं है। पर वह कहने लगा, "मैं अपने जीवन पर विश्वास नहीं करता कि वह कब समाप्त हो जाए; अत: आप कृपया इसी समय धर्मदेशना दीजिए।"

उसकी बलवान धर्मप्रीति देखकर शाक्य-मुनि ने मार्ग में ही धर्मोपदेश दिया, जिससे उसके चित्त के विकार समाप्त हो गए और वह अर्हत हो गया। वह प्रव्रज्या ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था पर पूर्व कर्मों के कारण उसे कठिनाई हो रही थी। उसी समय एक यक्षिणी ने गौ रूप धारण कर उसे टक्कर मारी और वह मर गया।

भिक्षुओं में चर्चा चली कि उसने तो बुद्ध का एक ही वाक्य भिक्षाटन के समय सुना था और उसी से अर्हत हो गया। शाक्य मुनि ने कहा, "हजारों निरर्थक गाथाओं से एक सार्थक गाथा अधिक श्रेयस्कर है जिसे सुनकर शांति मिलती है।"

तब यह गाथा कही।
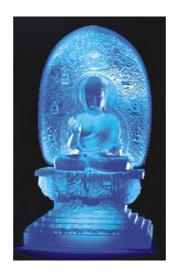
गाथा: यो च गाथासतं भासे, अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।102।।

अर्थ: कोई अनर्थकारी पदों से युक्त सौ गाथायें कहे। उनसे धर्म का एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

धर्मसंयुक्त एक पद ही शान्तिदायक होता है
कुण्डलकेशी थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में एक धनी श्रेष्ठी रहता था। उसकी एक सोलह वर्ष की पुत्री थी। वह देखने में बहुत सुन्दर थी। इस उम्र में लड़कियाँ पुरुषों की नजरों में चढ़ जाती हैं। अतः माता पिता ने सतर्कता बरती। उस लड़की को घर के ऊपरी मंजिल पर एक दासी के साथ रहने की व्यवस्था कर दी।

एक दिन सड़क पर काफी कोलाहल हो रहा था। राजपुरुष एक व्यक्ति को चोरी के अपराध में बाँधकर, कोड़ों से पीटते हुए उसे फाँसी देने ले जा रहे थे। लड़की ने शोर सुनकर जिज्ञासा जाहिर की "क्या हो रहा है ? " दासी और लड़की दोनों छत पर गए और चोर को वध स्थल ले जाते देखा। लड़की ने उस चोर को देखा और तुरंत उस पर मोहित हो गई। खाना-पीना छोड़ दिया और माता-पिता से कहा, "उस चोर से शादी नहीं कराओगे तो आत्महत्या कर लूँगी।" माता-पिता ने बहुत समझाया पर वह नहीं मानी। अन्त में श्रेष्ठी ने राजपुरुषों को हजार कार्षापण की रिश्वत दी और उस चोर को छुड़वा लिया। उस चोर की जगह किसी और का वध कर दिया गया। उस लड़की का विवाह उस चोर के साथ कर दिया गया।

युवक का नाम सत्थुक था। यद्यपि उसका विवाह उस लड़की के साथ हो गया था फिर भी उसके मन का चोर जाग रहा था। उसका मन उस लड़की के आभूषण हथिया लेने का था। अतः उसने पत्नी की हत्या का षड़यंत्र रचा। उसने खाना-पीना छोड़ दिया और खाट पकड़ ली। पत्नी ने पूछा, "क्या बात है ?" "जब राजपुरुष मुझे मारने ले जा रहे थे तब मैंने देवी से प्रार्थना की थी कि अगर प्राण बच गए तो पूजा करने आऊँगा। उनके ही प्रताप से तुम भी प्राप्त हुई हो। मुझे जाने में विलंब हो गया है।" पत्नी ने कहा "आप चिंता न करें, हम दोनों चलेंगे।" सत्थुक मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पत्नी से कहा कि वह सारे आभूषण धारण कर ले। जब उसने सारे आभूषण धारण कर लिए तो दोनों पर्वत की तलहटी पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर पति ने कहा, "पर्वत पर हम दोनों ही चलेंगे। शेष लोगों को घर भेज दो।" पत्नी ने वैसा ही किया। पत्नी कभी पर्वत पर चढ़ी नहीं थी पर पति का अनुसरण करती हुई वह चोटी तक पहुँच गई।

यह वही स्थल था जहाँ से चोरों को धक्का देकर नीचे फेंक दिया जाता था और वे मर जाते थे। स्त्री को थोड़ा भय होने लगा और वह घबराने लगी। सत्थुक बोला, "तुम अपने सारे आभूषण उतार दो।" पत्नी कुछ समझ नहीं पाई। तब सत्थुक ने स्पष्ट किया, "मूर्ख स्त्री ! तू समझती है कि मैं यहाँ पूजा करने आया हूँ। मैं तुम्हारे सारे आभूषण ले लूँगा और तुम्हारा वध कर दूँगा।" स्त्री ने समझाने की कोशिश की, "यह सब कुछ तुम्हारा ही तो है। तब तुम मुझे मारने पर क्यों तुले हो ? " पर सत्थुक नहीं माना। उस स्त्री ने सोचा, "यह मुझे मारने पर उद्यत है। मुझे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।" ऐसा सोचकर प्रेम का प्रदर्शन करते हुए उसने चोर से कहा, "प्रिय ! एक बार तो गले मिल लेने दो। फिर तो सब कुछ तुम्हारा।" वह हँसता हुआ बोला, "ठीक है।" वह उससे गले मिलने के बहाने आगे बढ़ी और जोर से धक्का दे डाला। वह चोर पहाड़ की चोटी से गिरकर मर गया।

गाथा: यो सहस्सं सहस्सेन, संगामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे संगामजुत्तमो।।103।।

अर्थ: हजारों-हजार मनुष्यों को युद्ध में जीतने की बजाय अपने आप को जीतना बड़ी विजय है।

एक ही सार्थक पद श्रेयस्कर
कुण्डलकेशी थेरी की कथा

अब उसने सोचा, "घर जाने से कोई लाभ नहीं। लोग समझेंगे कि मैंने ही अपने स्वामी को मार दिया। कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करेगा। अतः मुझे प्रव्रज्या ले लेनी चाहिए। ऐसा सोचकर, अपने सारे आभूषण वहीं छोड़कर परिव्राजकों के आश्रम में गई और उनसे आग्रह कर परिव्रजित हो गई। उन्होंने उसे एक हजार प्रश्न याद करा दिए और कहा कि अब तुम पूरे आर्यावर्त्त में घूमकर लोगों के साथ शास्त्रार्थ करो।

उसने अपना नाम 'जम्बू परिव्राजिका' रख लिया। लोग उससे वाद-विवाद करने में सक्षम न थे, अतः कतराते थे। वह भी किसी गाँव में भिक्षाटन के लिए प्रवेश करने से पूर्व बालू के ऊपर जम्बू की एक शाखा गाड़ देती थी तथा घोषणा कर देती थी, "जो मेरे साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो वह उसे उखाड़े।"

इस प्रकार घूमती-घूमती एक बार वह श्रावस्ती के ग्राम द्वार पर पहुँची। वहाँ पर उसने बालू के ऊपर जम्बू की शाखा गाड़ दी और गाँव में भिक्षाटन के लिए प्रवेश कर गई। गाँव के बालक उस जम्बूशाखा के पास खड़े हो उसे देख रहे थे। उसी समय सारिपुत्त भी उधर से भिक्षाटन के लिए निकले। उन्होंने बच्चों से पूछा, "यह क्या है ? " बच्चों ने पूरी बात बता दी। तब उन्होंने उनसे कहा, "यह शाखा उखाड़ दो।" "नहीं ! हमें डर लगता है।" "नहीं ! तुम उखाड़ दो। उसके प्रश्नों का जवाब मैं दूँगा।" बच्चे उत्साहित हुए तथा उस शाखा को उखाड़ फेंका। थोड़ी देर बाद परिव्राजिका लौटी तो उसने पूछा कि शाखा किसने उखाड़ी है ? तब बच्चों ने बता दिया, "हमने आर्य के कहने पर उखाड़ा है।"

परिव्राजिका और स्थविर सारिपुत्त का आमना-सामना हुआ। वाद-विवाद शुरू हुआ। परिव्राजिका प्रश्न पूछती गई और स्थविर उत्तर देते गए। अंत में स्थविर ने उससे पूछा, "तुम्हारे सभी प्रश्न समाप्त हो गए या कुछ और बाकी हैं ? " "भन्ते ! सभी समाप्त हो गए।" "तब मैं एक प्रश्न तुमसे पूछूँ ? " "पूछिए भन्ते ! " "स्थविर ने पूछा, "एक नाम क्या है ? " परिव्राजिका को इसका उत्तर ज्ञात न था। उसने अपनी हार मान ली तथा स्थविर से आग्रह किया कि वे उस प्रश्न का उत्तर बतावें। स्थविर ने उसे कहा, "तुम मेरे जैसा धर्म परायण बन जाओ।" "तो मुझे प्रव्रजित करा दीजिए।" सारिपुत्त ने उसे प्रव्रज्या दिला दी। उसका नाम 'कुण्डलकेशी थेरी' पड़ा। कुछ ही समय बाद उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

एक दिन धर्मसभा में चर्चा चली कि कुण्डलकेशी का धर्म श्रमण बहुत नहीं हुआ था। तब वह अर्हत कैसे बन गई। शास्ता ने समझाया, "निरर्थक सौ पदों की तुलना में एक सार्थक पद अधिक श्रेयस्कर होता है।" तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: अत्ता हवे जितं सेय्यो, या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स, निच्चं सञ्ञतचारिनो।।104।।

अर्थ: अन्य लोगों को जुआ, धन हरण, युद्ध या बल से जीतने की तुलना में अपने आप को जीतना श्रेयस्कर है। जिस आदमी ने अपने आप को जीत लिया है, जो अपने आप को हमेशा संयत में रखता है ....

सबसे बड़ी जीत क्या है ?
अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि ने जेतवन में साधना करते समय ये गाथायें अनर्थपृच्छक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही थी। जैसा नाम से स्पष्ट है इस ब्राह्मण ने 'अनर्थ' से सम्बन्धित प्रश्न पूछे थे तथा शास्ता ने उत्तर देकर उसे संतुष्ट किया था।

एक बार यह ब्राह्मण शास्ता के पास यह जानने के उद्देश्य से आया, "क्या सम्यकसम्बुद्ध प्राणियों का, किस प्रकार हित हो सकता है सिर्फ इसे ही जानते हैं या क्या करने से उनका अहित भी हो सकता है, इसे भी जानते हैं ? क्यों न उनसे यह प्रश्न पूछूँ ? "

वह शाक्य मुनि के सम्मुख प्रकट हुआ और सादर प्रणाम कर उसने अपने मन की शंका रख दी, "भन्ते ! आप अर्थ के विषय में ही सब कुछ जानते हैं या अनर्थ के विषय में भी आपको जानकारी है ? " तथागत ने उत्तर दिया, "बुद्ध लाभ और हानि दोनों को जानते हैं, लोगों का किस बात से हित और अहित, मंगल और अमंगल हो सकता है इसे भी स्पष्ट रूप से जानते हैं।" " भन्ते ! मेरी जिज्ञासा अनर्थ के विषय में कुछ जानने की है। कृपया इस विषय में कुछ बताइए।" शास्ता ने उसे समझाया कि क्या करने पर निश्चय ही मनुष्य का बुरा होगा - "(1) सूर्योदय के बाद तक सोये रहना (2) अक्सर, आदतन आलस्य में बैठा रहना (3) क्रूरता करना (4) सीमित मात्रा से अधिक मद्यपान करना जिससे नशा आ जाता है तथा गलतियाँ होती हैं (5) अकेले रात्रि में गलियों में घूमना या अकेले ही लम्बी यात्रा पर जाना तथा (6) पराई स्त्री की अभिलाषा करना। तुम इन कार्यों को करो, निश्चय ही तुम्हारा अहित (अनर्थ) हो जाएगा।" यह सुनकर ब्राह्मण अति प्रसन्न हुआ और बोल उठा, "साधु ! साधु !! गणाचार्य ! गणदेवता !! आप निश्चय ही लोगों के कल्याण की बात भी जानते हैं और उनके अहित की बात भी जानते हैं।" शास्ता ने कहा, "हाँ ब्राह्मण ! तुम सच कहते हो। मेरे समान अर्थ और अनर्थ दोनों को जानने वाला इस जगत में और कोई दूसरा नहीं है।"

गाथा: नेव देवो न गन्धब्बो, न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा, तथारूपस्स जन्तुनो।।105।।

अर्थ: ....ऐसे व्यक्ति की जीत को न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा, न मार ही, हार में बदल सकते हैं।

संयमी को कोई हरा नहीं सकता
अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा

फिर शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से जान लिया कि ब्राह्मण के प्रश्न पूछने का अभिप्राय क्या था। अतः उसके मन की बात जानकर उससे प्रश्न किया, "ब्राह्मण ! तुम्हारी जीविका का साधन क्या है ? " "हे गौतम ! मैं जुआ खेलकर अपनी जीविका चलाता हूँ।" "उसमें तुम्हारी सिर्फ जीत ही होती है या हार भी ? " "क्या कह रहे हैं शास्ता ? कभी मैं जीतता हूँ तो कभी मेरा प्रतिद्वन्द्वी जीतता है।" ऐसा कहे जाने पर शास्ता ने कहा, "ब्राह्मण ! दूसरों को जीतना एक बहुत ही छोटी चीज है। यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। महत्त्व की बात है अपने आप को जीतना। क्लेशों पर विजय प्राप्त करना, आश्रवों को जीत लेना ही सबसे बड़ी जीत है। ऐसी जीत जीतने वाले की जीवन में कभी भी हार नहीं होती है। जो अपने पर नियंत्रण रख सकता है, संयमी है, उसे न तो कोई देवता और न कोई गन्धर्व, न ब्रह्मा और न मार ही हरा सकता है। यही जीत सर्वश्रेष्ठ जीत है। अतः दूसरों को जीतने के बजाय इंसान को चाहिए कि वह अपने आप को जीतने के लिए प्रयत्नशील रहे।"

यह कहते हुए तथा घटनाक्रम से सम्बन्ध बनाते हुए शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।
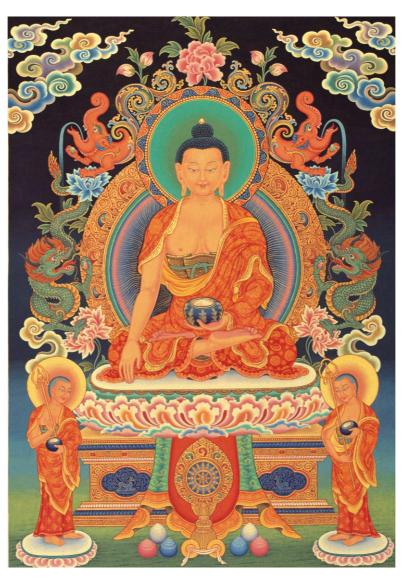
गाथा: मासे मासे सहस्सेन, यो यजेथ सतं समं।
एकं च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं।।106।।

अर्थः एक तरफ यदि कोई व्यक्ति हर महीने हजार मुद्राओं की दक्षिणा देते हुए सौ वर्षों तक लगातार यज्ञ करे और दूसरी ओर कोई दूसरा व्यक्ति परिशुद्ध चित्त वाले एक ही पुरुष का क्षणमात्र भी पूजन करे तो उस सौ वर्ष तक लगातार किए गए यज्ञ से एक क्षण का पूजन श्रेष्ठ है।

कौन सा पूजन श्रेष्ठ है ?
सारिपुत्त स्थविर के मामा की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने मामा के घर गए। मामा और भाँजे के बीच भले और अच्छे के विषय में चर्चा होती है। सारिपुत्त अपने ब्राह्मण मामा से पूछते हैं, " मामा, क्या आप भलाई का कोई काम करते हैं ?" "करता हूँ सारिपुत्त।" "क्या करते हैं ?" "प्रत्येक महीना एक हजार कार्षापण जमा कर दूसरों को दान देता हूँ।" "किसे देते हैं ?" "निगण्ठ साधुओं को।" "किस इच्छा से देते हैं ? " "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "आपको ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" " ब्रह्मलोक का मार्ग न तो आप जानते हैं और न आपके आचार्य !" ऐसा कहकर सारिपुत्त ब्राह्मण मामा को शास्ता के पास ले गये। सारिपुत्त ने शाक्य-मुनि से कहा, "यह ब्राह्मण इस प्रकार कहता है" ऐसा कहकर सारिपुत्त ने शाक्य मुनि को ब्राह्मण के साथ हुए संवाद को सुना दिया। स्थविर ने शास्ता से कहा, "अच्छा हो, भन्ते ! अगर आप ही इसे ब्रह्मलोक का मार्ग बता दें।" तथागत ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है, ब्राह्मण ? अगर तुम सैकड़ों वर्ष तक भी इस प्रकार दान देते रहोगे तो भी कोई विशेष फल नहीं मिलेगा। लेकिन जो आत्मज्ञानी है, अपने स्वरूप को जान गया है उसे थोड़ी भी दक्षिणा दोगे तो वह बहुत ही फलवती होगी।" ऐसा कह उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: यो च वस्ससतं जन्तु, अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं।।107।।

अर्थ: यदि कोई मनुष्य सौ वर्षों तक वन में रहकर लगातार अग्निहोत्र करता है, तथा दूसरी ओर कोई साधक परिशुद्ध चित्त वाले भिक्षु का एक क्षण भी पूजा, सम्मान सत्कार करता है तो वह एक क्षण की पूजा कर्म सौ वर्षों के यज्ञ कर्म से श्रेष्ठ है।

क्या अग्निहोत्र से श्रेष्ठ कुछ है ?
सारिपुत्त थेर के भाँजे की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने भगिनीपुत्र के पास गए। उन्होंने अपने भाँजे से पूछा, "क्या तुम कोई भलाई का काम भी करते हो ? " "करता हूँ, भन्ते !" "क्या करते हो ?" "प्रत्येक महीना एक पशु का वध करके अग्निहोत्र करता हूँ।" "ऐसा किस इच्छा से करते हो ?" "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "तुम्हें ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" "ब्रह्मलोक का मार्ग न तो तुम जानते हो और न ही तुम्हारे आचार्य। चलो, शास्ता के पास चलकर मार्ग की जानकारी लें।" ऐसा कहकर सारिपुत्त उस भगिनीपुत्र को तथागत के पास ले गए और संवाद सुनाकर उनसे निवेदन किया, "भन्ते ! आप इसे ब्रह्मलोक के मार्ग के विषय में बताइए।" शास्ता ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है ब्राह्मण !" "हाँ, भो गौतम।" तब शाक्य मुनि ने ब्राह्मण को समझाया, "हे ब्राह्मण ! अगर तुम सौ वर्षों तक अग्नियज्ञ करोगे तो भी उसकी तुलना में परिशुद्ध मन वाले एक व्यक्ति का एक ही क्षण का पूजन अधिक श्रेष्ठ होगा।" ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा सुनाई।
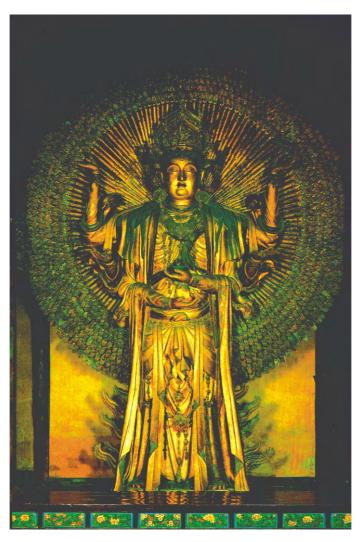
गाथा: यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं व लोके, संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति, अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो।।108।।

अर्थ: पुण्य की चाह करता हुआ मनुष्य संसार में पूरे वर्ष में कितने भी यज्ञ करे, हवन करे तो भी वह सरल चित्त पुरुष की की गई पूजा, वंदना, सत्कार के चौथाई भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता।

सरलचित्त पुरुष की पूजा श्रेयस्कर
सारिपुत्त स्थविर के मित्र की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने एक मित्र के घर गए। उसके पास जाकर उन्होंने मित्र से पूछा "मित्र ! क्या तुम कोई भलाई का काम भी करते हो ? " "करता हूँ, भन्ते !" "क्या करते हो ?" "प्रत्येक माह इष्टापूर्त यज्ञ करता हूँ।" उस काल में बहुत सारे लोग पैसे खर्च कर यह यज्ञ किया करते थे। "ऐसा किस इच्छा से करते हो ?" "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "तुम्हें ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" " ब्रह्मलोक का मार्ग न तो तुम जानते हो और न ही तुम्हारे आचार्य ! चलो, शास्ता के पास चलकर ब्रह्मलोक जाने के मार्ग के विषय में जाना जाये।" दोनों शास्ता के पास गए; सारिपुत्त ने संवाद के विषय में बताया और शाक्य-मुनि से आग्रह किया, "भन्ते ! आप इसे ब्रह्मलोक के मार्ग के विषय में बताइये।" शाक्य-मुनि ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है, ब्राह्मण !" "हाँ, भो गौतम !" तब तथागत ने ब्राह्मण को समझाया, "पुण्य की चाह करता हुआ आदमी संसार में साल भर में जो कुछ यज्ञ या हवन करता है, वह सरल चित्त वाले पुरुष की पूजा-वंदना का चौथाई भाग भी नहीं होता है।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: अभिवादनसीलिस्स, निच्चं वुड्ढापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति, आयु वण्णो सुखं बलं।।109।।

अर्थ: जो गुणीजनों का अभिवादन करता है और बड़े-बुजुर्गों एवं वृद्धजनों की सेवा करता है, उस सत्पुरुष की चार बातें बढ़ती हैं- 1. आयु, 2. वर्ण 3. सुख और 4. बल।

उम्र, सुख, बल बढ़ाने का रहस्य
आयुवर्द्धन कुमार की कथा

स्थान : अरञ्ञकुटिका

दीर्घलङ्घिक नगर में रहने वाले दो ब्राह्मण तीर्थिकसम्मत प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए। दोनों ने अड़तालिस वर्ष तपस्या की। उसके बाद उनमें से एक ने सोचा, "अगर मैं प्रव्रजित रह गया तो मेरा कुल-वंश नष्ट हो जाएगा। ऐसा सोचकर वह गृहस्थ आश्रम में वापस आ गया और उसने विवाह कर लिया। उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। पति-पत्नी ने सोचा कि दूसरे साथी भिक्षु से चलकर आशीर्वाद माँगा जाए। इस प्रकार वे दोनों बच्चे को लेकर भिक्षु के पास पहुँचे और सादर प्रणाम किया। भिक्षु ने पति-पत्नी दोनों को तो दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया पर पुत्र के प्रणाम करने पर कुछ नहीं बोला। माता-पिता ने इसका कारण पूछा तो भिक्षु ने कहा कि उस बालक की आयु मात्र सात दिन बची है। "इसका कोई उपाय है कि उसकी आयु बढ़ जाये ?" "मुझे तो नहीं मालूम, हाँ श्रमण गौतम जानते हैं। अगर उनसे मिलो तो शायद कोई समाधान निकल आए।"

वह शास्ता के पास पहुँचा। उन्हें सादर प्रणाम किया और उनसे आग्रह कर पूछा कि पुत्र की जीवन रक्षा का क्या कोई उपाय है ? "हाँ ब्राह्मण, है ! तुम अपने घर के द्वार पर मंडप लगाकर वहाँ बालक को बिठा दो। चारों तरफ से भिक्षुओं को बिठाकर सप्ताह पर्यन्त "परित्राण पाठ" कराओ तो उसका विघ्न दूर हो जाएगा।" ऐसा ही किया गया। सातवें दिन सायंकाल शाक्य-मुनि भी वहाँ स्वयं पधारे। एक प्रेत वहाँ पर बालक के प्राण हरने के लिए घात लगा कर बैठा था। पर सभी सद्पुरुषों की उपस्थिति के कारण उसे प्राण हरने का मौका नहीं मिल सका और उसे वापस जाना पड़ा। दूसरे दिन बच्चे के माता-पिता उसे लेकर तथागत के पास गए और सादर प्रणाम किया। आज शास्ता ने उसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। लोगों ने जिज्ञासा की कि वह कितने वर्ष जियेगा। शास्ता के मुँह से निकल पड़ा "एक सौ बीस वर्ष।" इतनी लम्बी आयु के कारण उसका नाम 'दीर्घायु कुमार' पड़ गया।

लड़का बड़ा हुआ। एक बार जेतवन आया। भिक्षुओं ने उसे पहचान लिया और शास्ता से पूछा, "क्या कोई उपाय है जिससे लम्बी उम्र पाई जा सके ?" शाक्य-मुनि ने समझाते हुए कहा, "हाँ भिक्षुओं ! बड़े-बुजुर्गों, विद्वान और गुणी लोगों की सेवा और सम्मान करना न केवल व्यक्ति की उम्र बढ़ाता है, बल्कि सुन्दरता, सुख और बल भी बढ़ाता है।" तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, सीलवन्तस्स झायिनो।।110।।

अर्थ: किसी व्यक्ति का दुराचारी और असंयमी होकर सौ वर्ष तक जीवित रहना भी निरर्थक है। उसके विपरीत सदाचारी और संयमी होकर एक दिन भी जीवित रहे तो वह जीवन श्रेयस्कर है।

किसका जीवन श्रेष्ठ है ?
संकिच्च सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

एक बार तीस भिक्षु शास्ता से ध्यान-विपश्यना की साधना लेकर श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर एक गाँव में रहने लगे। उस गाँव के पास ही एक घना जंगल था। उसमें कुछ लुटेरे ठहरे हुए थे। वे देवताओं को खुश करने के लिए एक नर-बलि देना चाहते थे। अतः वे विहार में गए और भिक्षुओं से कहा कि कोई एक भिक्षु नर-बलि के लिए चले। अधिकांश भिक्षु डरे हुए थे पर एक ने हिम्मत जुटाकर जाने की इच्छा व्यक्त की। वह सात वर्ष का ही था पर उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उसने अन्य भिक्षुओं से कहा कि उसके गुरू स्थविर सारिपुत्त को इस प्रकार की घटना का अंदेशा था। उन्होंने संकिच से कहा था कि अगर ऐसी बात है तो वह डाकुओं के साथ चला जाए। अतः वह उन लुटेरों के साथ चला गया। उसके जाने से भिक्षु बहुत दुःखी हुए।

उधर जंगल में लुटेरों ने बलि की तैयारी शुरू कर दी। जब सारी तैयारी हो गई तो लुटेरों के नेता ने मारने के प्रयोजन से तलवार उठाई। उस समय सामनेर ध्यान-विपश्यना में लीन था। उसने तलवार से वार किया, तलवार मुड़ गई और सामनेर का कुछ भी नहीं बिगड़ा। मुखिया ने तलवार की धार तेज की और इस बार फिर वार किया पर इस बार भी तलवार मुड़ गई। लुटेरे आश्चर्यचकित और भयभीत थे। वे सभी सामनेर के पैरों पर गिर पड़े और प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। उन्हें प्रव्रज्या दे दी गई। सामनेर उनके साथ तीस भिक्षुओं के पास वापस आ गया। वे उसे देख बहुत खुश हुए। तब वे सभी शास्ता और सारिपुत्त के पास जेतवन पहुँचे।

तथागत को सारी बात की जानकारी दी गई। तब उन्होंने समझाया, "जो दुराचारी और असंयमी है उसका सौ वर्ष जीना भी बेकार है पर सदाचारी और संयमित होकर एक दिन भी जीना श्रेयस्कर है।"

यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, दुप्पञ्ञो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पञ्ञवन्तस्स झायिनो।।111।।

अर्थ: दुर्बुद्धि और असंयमित होकर सौ वर्ष जीने की तुलना में प्रज्ञावान और ध्यान भाव में रत रहकर एक दिन का जीवन जीना अधिक श्रेयस्कर है।

सत्कर्म की जिन्दगी ज्यादा शुभ
स्थाणु कौण्डिन्य स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

एक समय थेर कौण्डिन्य ने शास्ता से ध्यान-विपश्यना की शिक्षा ली और वन में साधना कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया। वे जंगल से निकले और गाँव की ओर जा रहे थे। रास्ते में उनके मन में आया कि पथ से हटकर थोड़ा ध्यान कर लेना चाहिए। अत: वहीं एक जंगल की झाड़ी में प्रवेश कर विपश्यना साधना में तल्लीन हो गए।

उसी समय डाकुओं का एक समूह डाके का सामान लिए आ रहा था। जंगल में प्रवेश कर उन्होंने थोड़ा आराम करना चाहा। थेर कौण्डिन्य को एक पेड़ समझकर उनके आसपास गठरियाँ रखकर सो गए। सुबह हुई, उन्होंने थेर को देखा तो वे डर गए। उन्होंने सोचा कि यह कोई भूत-प्रेत है। अत: वे भागने लगे। स्थविर ने उन्हें पुकारकर बताया कि वे भूत नहीं थे, वरन् एक भिक्षु थे। यह देखकर डाकुओं को बड़ी शर्मिन्दगी हुई और वे थेर के चरणों में गिर गए तथा प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। थेर ने सबों को प्रव्रज्या दिला दी।

प्रव्रज्या प्राप्त कर सभी जेतवन विहार पहुँचे। शास्ता उन दिनों वहीं साधना कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर सभी ने शाक्य-मुनि को सादर प्रणाम किया। तब कौण्डिन्य ने पूरी कथा विस्तार से सुनाई। शास्ता ने उनकी बात सुनकर नए भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं ! कुबुद्धि के साथ सौ वर्ष तक जीवन-यापन करने की तुलना में प्रज्ञा प्राप्त कर सत्कर्म करते हुए एक दिन की जिन्दगी ज्यादा शुभ है।" तब घटना से मेल खाती हुई उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, वीरियमारभतो दळहं।।112।।

अर्थ: आलसी और उद्योग रहित आदमी के सौ वर्षों के जीवन की तुलना में दृढ़ उद्योग करने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन अधिक श्रेयस्कर होता है।

उद्यमी पुरुष का जीवन श्रेष्ठ
सर्पदास स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

श्रावस्ती में किसी कुलपुत्र ने शास्ता का धर्मोपदेश सुना और उससे प्रभावित होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। आगे चलकर उसे जीवन के प्रति अनुत्सुकता प्रकट होने लगी पर उसे गृहस्थ बनना अच्छा नहीं लग रहा था। अत: उसने आत्महत्या करने की सोची।

एक दिन कुछ भिक्षुगण एक डब्बा में एक विषधर साँप को बंद कर वन में छोड़ने जा रहे थे। उसने उनसे वह डब्बा ले लिया और उसमें हाथ डालकर साँप से कटवाने की कोशिश करता रहा पर साँप ने उसे नहीं काटा। बाद में उसने यह बात भिक्षुगण को बताई तो भिक्षुगण को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ कि साँप उसे नहीं काटेगा।

कुछ समय बाद एक नाई अपने उस्तुरा के साथ विहार आया। भिक्षु ने उस्तुरा उठाया और उसे एक किनारे ले जा, पेड़ पर अपनी गर्दन रख उस पर छुरा चलाने जा रहा था। उसी समय उसे अपना सदाचार तथा शील याद आ गया और वह अर्हत्व प्राप्त कर गया। वह उस्तुरा वापस लेकर विहार चला आया।

भिक्षुओं ने पूछा, "कहाँ गए थे ? " "उस्तुरा से अपनी हत्या करने गया था।" "हत्या क्यों नहीं की ? " "गला काटने की जगह क्लेश-बंधन काट आया।"

भिक्षुगण ने सोचा "यह झूठ-मूठ का अपनी शेखी बघार रहा है।" अत: वे शाक्य-मुनि के पास गए तथा सारी बात बताई। शाक्य-मुनि ने समझाया, "भिक्षुगण ! क्षीणास्त्रव भिक्षु अपने शरीर पर शस्त्र नहीं चलाते हैं।" भिक्षुओं ने फिर प्रश्न किया कि साँप ने उसे क्यों नहीं काटा। उत्तर में शास्ता ने बताया कि तीन जन्मों पूर्व वह साँप उस भिक्षु का दास था। अत: वह अपने स्वामी की हत्या नहीं करना चाहता था। इस घटना के बाद वह भिक्षु सर्पदास के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

भिक्षुगण ने एक और प्रश्न किया, "भन्ते ! यह भिक्षु उस्तुरा से अपना गला काटने की चेष्टा में ही अर्हत कैसे हो गया ? क्या एक क्षण में कोई अर्हत्व प्राप्त कर सकता है ? " "हाँ भिक्षुओं ! सर्पदास ने उद्यम किया। ऐसा भिक्षु जमीन से पैर उठाने के बाद पुन: रखने के बीच में ही अर्हत्व प्राप्त कर सकता है।"

समय और परिस्थिति के अनुसार शाक्य मुनि ने यह गाथा कही।
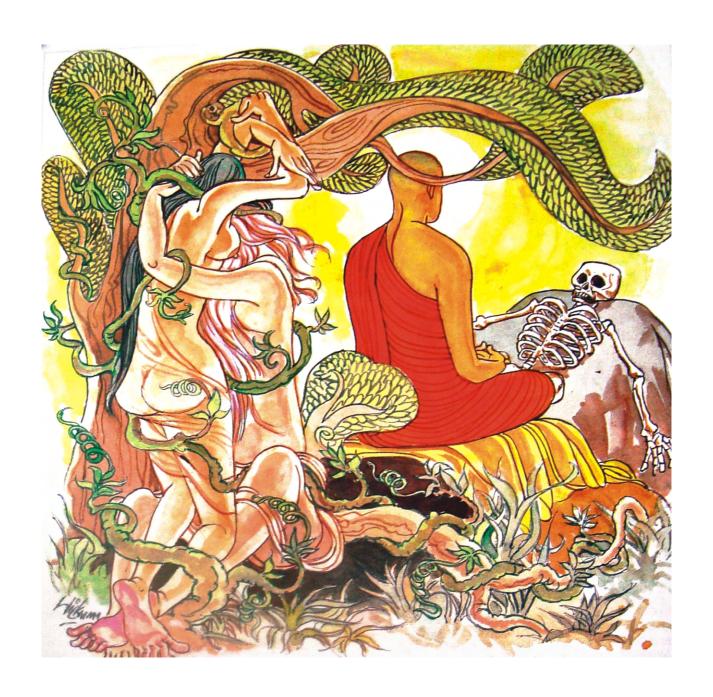
गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयव्ययं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयव्ययं।।113।।

अर्थ: पंच स्कन्ध के उत्पाद-व्यय को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से उस व्यक्ति का जीवन श्रेष्ठ होता है जो एक दिन भी उत्पाद-व्यय देख पाता है।

उत्पाद-व्यय समझने वाले का जीवन अधिक श्रेयस्कर
पटाचारा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

पटाचारा श्रावस्ती के एक धनी सेठ की इकलौती बेटी थी। वह बहुत सुन्दर थी और गुणवान भी थी, पर वह अपने नौकर को दिल दे बैठी और फिर चुपचाप उसके साथ घर छोड़कर निकल गई।

वे श्रावस्ती से बहुत दूर चले गए और वहाँ उन्होंने गृहस्थी बसा ली। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई। पति के यहाँ उसे सुख-सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। उसे मायका याद आने लगा। पुत्र-जनन हेतु उसने मायके जाने का प्रस्ताव रखा पर उसका पति टाल-मटोल करता रहा। अतः अपने पड़ोसी को यह बताकर कि 'वह मायके जा रही है, आप पति को बता देना', वह मायके के लिए निकल पड़ी। पति लौटकर आया, उसे पता चला कि उसकी पत्नी मायके के लिए प्रस्थान कर गई है। वह उसके पीछे चल पड़ा। रास्ते में ही उससे भेंट हो गई। पटाचारा को प्रसव पीड़ा हुई। पुत्र ने जन्म लिया। आगे जाना टल गया। दोनों घर वापस आ गए।

अगले वर्ष वह फिर गर्भवती हुई। इस बार पति-पत्नी अपने बेटे को साथ लेकर चले। रास्ते में भीषण तूफान आया और वर्षा होने लगी। उधर पटाचारा को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। उसका पति कुल्हाड़ी से झाड़ी काटकर आश्रय बनाने लगा पर उसे साँप ने काट लिया। उसकी मृत्यु हो गई। उधर किसी तरह पटाचारा ने पुत्र को जन्म दिया।

सुबह हुई, मृत पति को छोड़कर अपने पुत्रों को गोद में लेकर वह श्रावस्ती की ओर चल पड़ी। रास्ते में नदी आई। रात की बरसात के कारण नदी में बाढ़ आ गई थी और पानी गर्दन से थोड़ा नीचे तक बह रहा था। बड़े बेटे को तट पर बिठा छोटे बच्चे को उस पार रखने जा रही थी कि एक बाज ने झपट्टा मारा और बच्चे को लेकर उड़ गया। माँ शोर करने लगी। बड़े बच्चे को लगा कि उसे माँ बुला रही है। वह पानी में उतरा और डूबकर मर गया।

वह रोती हुई किसी प्रकार नदी पार कर श्रावस्ती की ओर चल पड़ी। उधर से कुछ लोग आ रहे थे। उनसे अपने माँ-बाप और भाई-बहनों के विषय में पूछा। पथिक ने बताया, "रात की तूफानी बरसात में उनका मकान गिर गया, उसमें दबकर परिवार के सभी सदस्य मर गए। सामने दिख रहा बहुत सारा धुँआ उनकी चिता से ही उठ रहा है।"

वह रोती हुई श्मशान गई। माँ-बाप, भाई-बहन की चिताएं देखीं। वह अपना होश-हवास खो बैठी। पागलों जैसी नंगी घूमने लगी और कहती, "मेरे दोनों पुत्र मर गए, पति को साँप ने डँस लिया, एक ही चिता पर माँ-पिता, भाई-बहन जल गए।" लड़के उसके ऊपर धूल, मिट्टी, पत्थर फेंका करते।

एक दिन घूमती हुई जेतवन में प्रवेश करने लगी। लोगों ने इस पगली को रोकना चाहा, पर तथागत की दृष्टि उस पर पड़ गई। उसे अंदर आने दिया गया। तथागत को देखते ही उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। उसे अपनी नग्नता का भान हुआ और वह उकड़ूँ होकर बैठ गई। किसी ने उसके शरीर पर चीवर डाल दिया।

शास्ता प्रवचन दे रहे थे। पटाचारा अन्दर से परिशुद्ध होने लगी। वह स्रोतापन्न हो गई। उसने बुद्ध को अपना दुखड़ा कह सुनाया। तथागत ने उसे समझाया कि उसे अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ना होगा। उसने प्रव्रज्या लेने की इच्छा व्यक्त की। उसे प्रव्रजित कर दिया गया। वह पटाचारा नाम से प्रसिद्ध हो गई।

एक दिन वह पैर पर जल डाल रही थी। वह थोड़ी दूर जाकर सूख गया। दोबारा डाला, यह और थोड़ी दूर गया। तीसरी बार डाला तो यह काफी दूर तक जाकर सूख गया। उसने लोगों को भी इसी प्रकार तीन ढंग से मरते हुए देखा। तब बुद्ध ने अपने प्रकाश से उसे समझाया कि पंचस्कन्धों के उत्पाद-व्यय को न देखने वाले अज्ञानी के सौ वर्षों की तुलना में उत्पाद-व्यय समझने वाले एक ज्ञानी का एक दिन का जीवन अधिक श्रेयस्कर है।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो अमतं पदं।।114।।

अर्थ: अमृत पद, उत्तम धर्म-निर्वाण का साक्षात्कार न करते हुए प्राणी का सौ वर्षों तक जीना भी व्यर्थ है। इसके विपरीत यदि कोई इस उत्तम धर्म निर्वाण का साक्षात्कार करने के बाद एक दिन भी जीवित रहता है तो वही श्रेष्ठ है।

किस धर्म का साक्षात्कार श्रेष्ठ ?
किसा गोतमी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

किसा गोतमी बहुत ही दुबली-पतली थी। इसीलिए लोग उसे 'किसा' कहते थे।

किसा गोतमी बुद्ध के सम्मुख खड़ी थी। उसने कहा, "आपने ही कल मुझ पर दया की थी और मुझे दुत्कार कर नहीं भगाया था।" बुद्ध मुस्कुराये और बोले, "हाँ बहन ! मुझे याद है। तुम वह दवा खोज लाई ? "

गोतमी ने आपबीती पुनः सुना दी, "मेरा नवजात शिशु साँप के साथ खेल रहा था और साँप ने उसके शरीर पर एक दंत चिन्ह अंकित कर दिया और उसके बाद से उसका शरीर ठंडा पड़ गया। दूध पीना बंद कर दिया, न तो बोलता था और न उसके शरीर में कोई गति थी। मैं अपने पुत्र को गँवाना नहीं चाहती थी। किसी ने आपके विषय में बताया कि पहाड़ी पर एक महात्मा रहते हैं। संभवत: उनके पास इसका इलाज हो। मैं आपके पास आई तो आपने औषधि के रूप में थोड़ा सरसों लाने के लिए कहा। सिर्फ यह ध्यान रखना था कि किसी ऐसे घर से नहीं लाना था जहाँ कोई मरा हो।" "तो तुम वैसा सरसों खोज लाई ?" नहीं भन्ते ! मैं अपने पुत्र को लेकर एक घर से दूसरे घर गई। सरसों माँगा और सबों ने सरसों दिया क्योंकि दुखियारों पर दया की रीति प्राचीन काल से ही चली आ रही है। लेकिन जब पूछा 'तुम्हारे घर में कोई मरा तो नहीं है, बहन ?' तो लोग कहते, 'क्या कह रही हो बहन, जीवित कम हैं मृत अधिक।' मैं सरसों वापस कर, धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाती। अगले दरवाजे पर फिर खटखटाती। उत्तर मिलता, 'जिसने सरसों बोया था, काटने से पहले ही चल बसा।' इस प्रकार मुझे कोई ऐसा घर नहीं मिल पाया जहाँ कोई मरा न हो। भन्ते ! दया कर बतावें कि वह सरसों कहाँ मिलेगी ? " दयामय बुद्ध ने समझाया, "सरसों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुमने वह सरसों पा लिया है। कल तक तुम समझती थी कि तुम्हारा दु:ख सिर्फ तुम्हारा है पर आज जानती हो कि तुम्हारे दु:ख में सभी शामिल हैं । जो दु:ख सबों के साथ बाँटा जाता है, कम हो जाता है। तुम्हारा पुत्र कल ही मर गया था। उसका अंतिम संस्कार कर दो।"

बुद्ध की बात सुन उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह भिक्षुणी बन गई और समय के अन्तराल से अर्हत्व भी प्राप्त कर लिया।

तब बुद्ध ने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो धम्ममुत्तमं।।115।।

अर्थ: उत्तम धर्म की ओर ध्यान न देते हुए सौ वर्ष जीने से उत्तम धर्म की ओर ध्यान देते हुए एक दिन जीना श्रेष्ठ है।

किस धर्म का अनुसंधान श्रेयस्कर ?
बहुपुत्रिका थेरी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ रहता था। उन्हें सात पुत्रों एवं सात पुत्रियों का सुख प्राप्त था। इतने अधिक बच्चों की माँ होने के कारण लोग उस स्त्री को 'बहुपुत्रिका' कहते थे। समय की बात है पति दुनिया से चल बसा। बहुपुत्रिका अपने बाल-बच्चों के साथ रह गई।

बाल-बच्चे बड़े हुए। लड़कों की शादियाँ हो गईं। लड़कियाँ ससुराल चली गईं। पति के मरने के बाद माता परिवार और सम्पत्ति का विभाजन नहीं चाहती थी। पर उसके बेटों ने उसे समझाया, "माँ ! पिताजी के देहान्त के बाद आप परिवार का बोझ अपने ऊपर क्यों उठाये हुई हैं ? क्या हम लोग आपकी सेवा नहीं करेंगे ? " शुरू-शुरू में तो उसने पुत्रों की इस बात की अनसुनी कर दी पर जब उसे बार-बार कहा गया तो फिर उसने सोचा, "बच्चे शायद ठीक ही कह रहे हैं। वे मेरी देखभाल कर लेंगे। मुझे इस प्रपंच में फँसे रहने से क्या फायदा ? " ऐसा सोचकर उसने अपनी पूरी सम्पत्ति का बँटवारा कर दिया और अपने पास कुछ नहीं रखा।

अब वह एक संतान के यहाँ कुछ दिन रहने के बाद दूसरे के यहाँ जाकर रहने लगी। पहले तो कुछ दिनों तक सभी कुछ ठीक-ठाक चला पर कुछ समय बाद घर की स्त्रियाँ ताना देने लगीं। किसी परिवार वाले उसका स्वागत नहीं करते थे। ऐसा देख उसका मन खट्टा हो गया। उसने परिवार त्याग दिया और प्रव्रज्या धारण कर लिया। वह 'बहुपुत्रिका थेरी' के नाम से विख्यात हो गई।

वह बुढ़ापे में भिक्षुणी बनी थी। उसे मालूम था कि उसकी जीवन अवधि सीमित है। अतः वह पूरी श्रद्धा के साथ साधना में जुट गई। एक दिन शास्ता ने उसे यह उपदेश दिया।

DHAMMAPADA
SAHASSA VAGGA

पाप से कैसे बचें ?
धम्मपद
पाप वर्ग
गाथा और कथा
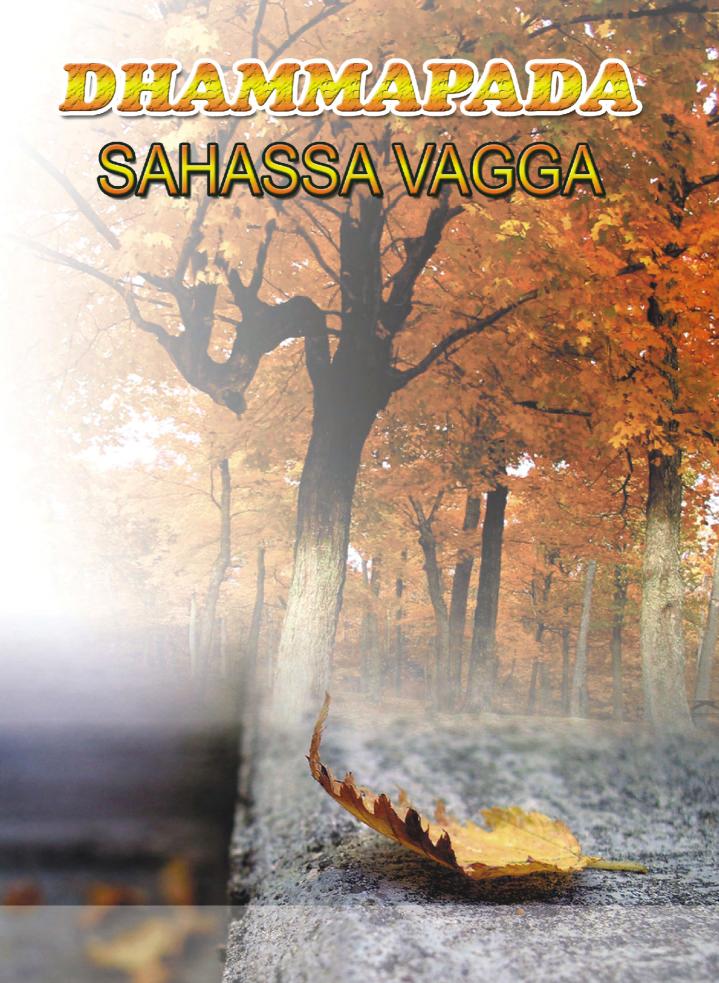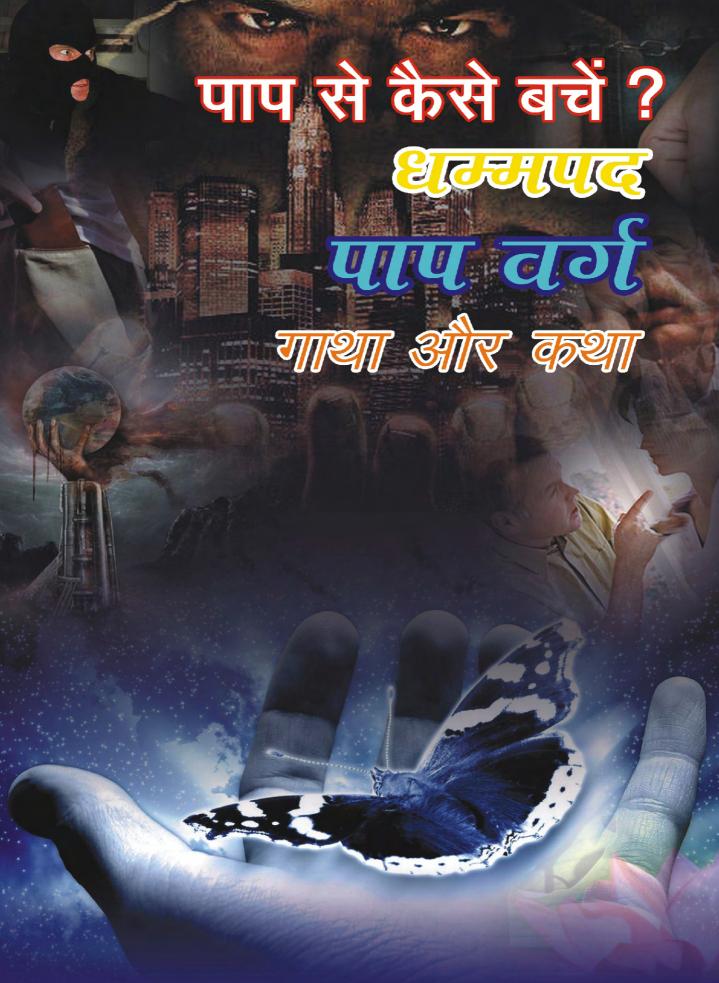
पाप से कैसे बचें ?

धम्मपद

पाप वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

पाप वर्ग

गाथा: अभित्थरेथ कल्याणे, पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोन्तो पुञ्ञं, पापस्मिं रमती मनो ।। 116।।

अर्थ: शुभ कर्म करने में विलंब नहीं करना चाहिए और पाप से चित्त को सदा दूर हटाना चाहिए । अगर मनुष्य सत्कर्म करने में मंदी दिखाता है तो सम्भव है उसका मन सत्कर्म से हटकर पापकर्म की ओर प्रेरित हो जाए । अर्थात् सत्कर्म करने में दृढ़ता दिखानी चाहिए। मुझे यह करना चाहिए या नहीं करना चाहिए, दान देना चाहिए या नहीं देना चाहिए- जो इस दुविधारूपी कीचड़ में फँस जाता है; उसकी कमजोरी देखकर लोभरूपी शत्रु उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। उसका मन परास्त होकर लोभ की ओर रम जाता है तथा वह पाप करने को प्रेरित हो जाता है।

शुभ कर्म करने में कदापि विलंब न करें
दीन एकशाटक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में एक दरिद्र ब्राह्मण युगल रहता था जिसके पास पहनने के लिए मात्र एक वस्त्र था। अतः उसे एकशाटक कहते थे। किसी दिन पत्नी उस वस्त्र को धारण कर विहार गई और रात्रि में वह ब्राह्मण उस वस्त्र को धारण कर धर्म श्रवण हेतु विहार में प्रविष्ट हुआ। धर्म श्रवण करते-करते उसका अंग-अंग पुलकित हो उठा। उस प्रीति की स्थिति में उसके मन में आया कि वह उस वस्त्र को शास्ता को दान स्वरूप चढ़ा दे। पर उसका मन यह सोचकर डाँवाँडोल होता रहा कि अगर वह इसे बुद्ध को दे देगा तो उसकी पत्नी के लिए कुछ नहीं बचेगा। इस प्रकार द्वन्द्व में रात्रि के दो प्रहर बीत गए। तीसरे प्रहर में उसने सोचा कि अगर मैं इसी प्रकार द्वन्द्व में पड़ा रहा तो बुद्ध को दान देकर पुण्य कमाने का एक सुनहरा अवसर गँवा दूँगा। अतः उसने उस वस्त्र को तथागत को समर्पित कर दिया और खुशी के मारे तीन बार जोर से बोल उठा, "मैं जीत गया, मैं जीत गया।" उस समय राजा प्रसेनजीत भी धर्म सभा में विद्यमान थे। ब्राह्मण की उक्ति सुनकर उन्होंने अपने सिपाहियों से पता लगाने के लिए कहा कि ब्राह्मण क्या जीत गया? सिपाहियों के बताने पर और ब्राह्मण की त्याग- भावना जानकर राजा ने सोचा कि सचमुच ही यह ब्राह्मण महान दानी है तथा इसने एक बहुत ही कठिन कार्य किया है। अतः वह उपहार का पात्र है। राजा ने आदेश दिया कि उस ब्राह्मण को एक वस्त्र भेंट में दिया जाये। बाह्मण ने वस्त्र मिलने पर उस वस्त्र को बुद्ध को भेंट चढ़ा दिया। उसके बाद उस ब्राह्मण को राजा की ओर से दो वस्त्र दिए गए। उसने उन्हें भी शास्ता को समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् एक-एक कर उसे चार, आठ और सोलह वस्त्र दिए गए और उसने उन्हें भी एक-एक कर तथागत को चढ़ा दिया। जब राजा ने 32 वस्त्र दिए तो उसने 30 वस्त्र बुद्ध को दान करके एक वस्त्र अपने लिए और एक अपनी पत्नी के लिए रख लिया ।

राजा प्रसन्न हुआ और उसे लगा कि ब्राह्मण ने सचमुच ही महान त्याग किया है। अतः उसने मखमल की दो बेशकीमती चादरें उसे उपहार स्वरूप दीं । ब्राह्मण ने एक चादर शास्ता की कुटी में मच्छरदानी की तरह छत में तान दी। दूसरी चादर को अपने घर के बाहर बरामदे में तान दी जहाँ भिक्षुगण भिक्षाटन के लिए आकर खड़े होते थे। संध्या बेला में पुनरागमन पर जब राजा ने ब्राह्मण के कीमती चादर को तना देखा तो वह ब्राह्मण के दान से अति प्रसन्न हुआ। उसने ब्राह्मण को "सर्वचतुष्क " दान दे दिया; अर्थात् 7 वस्तुएं 4-4 की मात्रा में - चार हाथी, चार घोड़े, चार पुरुष, चार स्त्रियाँ, चार दासियाँ, चार हजार कार्षापण तथा चार ग्राम।

बाद में भिक्षुओं के धर्म सभा में चर्चा चली कि एकशाटक ब्राह्मण ने छोटा सा दान दिया पर उसके पुण्य से उसे 4-4 वस्तुएँ प्राप्त हो गईं। भिक्षुओं को इसका रहस्य समझाते हुए बुद्ध ने बताया कि मन में जब कभी अच्छे कर्म करने का संकल्प आ जाए तो उसे तुरंत कर देना चाहिए क्योंकि अच्छे संकल्प विरले ही आते हैं। ब्राह्मण ने अगर प्रथम प्रहर में दान दिया होता तो उसे "सर्वषोडशक" पुरस्कार - अर्थात हर चीज 16 की मात्रा में मिलती। अगर उसने द्वितीय प्रहर में दान दिया होता तो उसे प्रत्येक वस्तु 8 की मात्रा में मिलती। चूँकि उसने दान देने में विलंब किया। अतः उसे सिर्फ 4-4 की मात्रा में ही दान मिला। मनुष्य के चित्त में जब भी सत्कर्म करने की इच्छा उठे, उसे तर्क-वितर्क के दाँव-पेंच में नहीं पड़ना चाहिए। तर्क - वितर्क से वह दान हृदय से दिया गया दान नहीं रह जाता। इस कारण वह अल्प फल देता है। इसलिए चंचल चित्त से भ्रमित नहीं होना चाहिए। अगर मन तर्क-वितर्क में लगा रहा तो संभव है मन गलत निर्णय ले ले और इस कारण वह पाप प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाए। अभिप्राय यह है कि जैसे ही सत्कर्म करने की चाह हो, इससे पूर्व कि कोई दूसरा व्यक्ति वह सत्कर्म करे, हमें ही वह सत्कर्म कर देना चाहिए। विलंब की जगह तत्परता दिखानी चाहिए।

सत्कर्म करने में दृढ़ता भी दिखानी चाहिए। मुझे यह करना चाहिए या नहीं, दान देना चाहिए या नहीं जो इस दुविधारूपी कीचड़ में फँस जाता है, उसकी कमजोरी देखकर लोभ रूपी शत्रु उसे चारों ओर से घेर लेता है। उसका मन परास्त होकर लोभ में रम जाता है तथा वह पाप करने को प्रेरित हो जाता है।
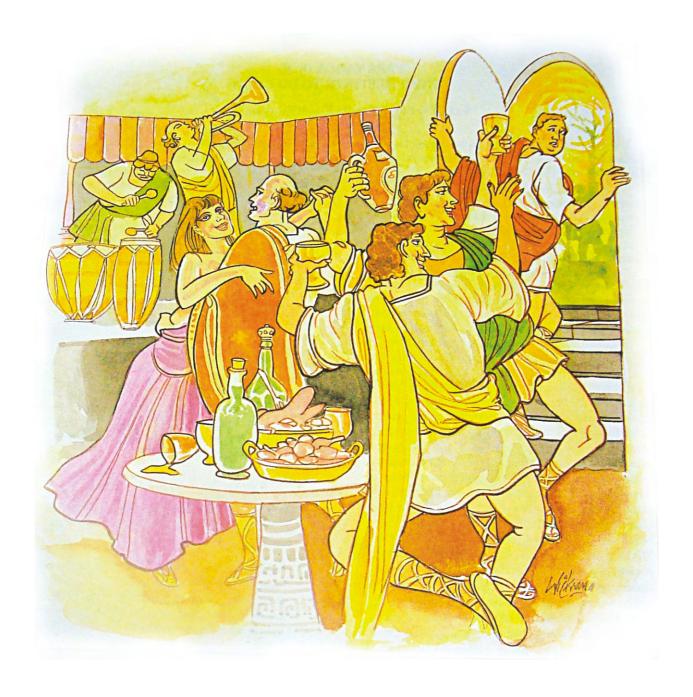
गाथाः पापञ्चे पुरिसो कयिरा, न नं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ, दुक्खो पापस्स उच्चयो ।। 117।।

अर्थः किसी व्यक्ति से कोई गलत काम हो जा सकता है। पर उसे वह गलत काम बार-बार, लगातार, नहीं करना चाहिए । उसे उन गलतियों से आनन्द की अनुभूति नहीं होनी चाहिए। गलतियों का संचयन दुःखदायी होता है ।

पाप का संचय दुखकर होता है
सेय्यसक थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सेय्यसक थेर लालउदायी थेर के समभिक्षु थे। ब्रह्मचर्य के अनुशासन से च्युत होकर उन्होंने कुछ बुरी आदतें पकड़ लीं जो भिक्षु के लिए वर्जित थीं। वे अपने आप को अनैतिक ढंग से उत्तेजित कर लिया करते थे। तथागत को इसकी जानकारी हुई और उन्होंने सेय्यसक को बुलाकर पूछा कि जो कुछ उन्होंने सुना है, क्या वह सच है ? सेय्यसक ने सच्चाई स्वीकार कर ली। तब बुद्ध ने उसे समझाया कि वह मूर्खतापूर्ण काम कर रहा है। किसी भी भिक्षु को ऐसा अनैतिक कार्य नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने उसे ब्रह्मचर्य और विहार के अन्य नियमों के विषय में बताया तथा समझाया कि इस प्रकार के कर्म इस जगत में तथा आने वाले जगत - दोनों में ही दु:ख देते हैं ।

शास्ता ने भिक्षुसंघ को यह भी सीख दी कि नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। उसमें ढिलाई नहीं बल्कि सतर्कता बरतनी चाहिए। संभव है सदैव सतर्कता के बाद भी भिक्षु से कभी नियम का उल्लंघन हो जाए। ऐसी परिस्थिति में भी इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए कि गलती से कहीं दोबारा नियम का उल्लंघन न हो जाए।

टिप्पणी: भिक्षु लालउदायी शास्ता के बचपन के मित्र थे। तथागत के परिवार के सदस्यों को त्रिरत्न में प्रविष्ट कराने का श्रेय उन्हें ही जाता है। गृहत्याग के बाद बुद्ध को अपने परिवार के पास प्रथम बार कपिलवस्तु लाने का श्रेय भी उन्हें ही जाता है। सिद्धार्थ के गृहत्याग के बाद राजा ने उन्हें ढूँढ़ने के लिए विभिन्न दिशाओं में अनेक दूत भेजे पर कोई भी सिद्धार्थ के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं ला पाया। इस प्रकार 6 वर्ष बीत गए। तब दो दासियाँ यशोधरा को शुभ समाचार देती हैं कि व्यापारीगण राजकुमार के विषय में सूचना लाए हैं। अंततः भल्लूक और त्रिपुष नाम के दो व्यापरियों ने यशोधरा को सूचना दी कि उन्होंने राजकुमार को राजगृह में देखा है। उन्होंने उन्हें देखा ही नहीं है, उनका चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद भी प्राप्त किया है। "जिसे हम सबों ने एक राजकुमार के रूप में खोया था, उसे लाखों, करोड़ों गुणा अधिक शक्तिशाली महात्मा के रूप में प्राप्त किया है।" यशोधरा के हृदय में उमंगें उसी प्रकार उछलने लगती हैं, जैसे गंगा पहाड़ों से पहली बार धरती पर आकर उछलने लगती है। राजा ने तब राजकुमार के पास अनेक दूतों द्वारा संदेश भेजा पर वे सभी दूत बुद्ध के तेज के सामने सभी संदेश भूल गए तथा प्रवचन सुन संघ में शामिल हो गए। अन्त में राजा ने शास्ता के बचपन के सबसे घनिष्ठ मित्र लालउदायी को यह संदेश देकर भेजा कि जाकर मेरे पुत्र से कह दो कि उनके पिता अपने पुत्र की याद में जीवन की अंतिम सीढ़ी पर खड़े हैं और उनकी आँखें पुत्र की एक झलक पाने को तरस रही हैं। साथ ही यशोधरा ने भी संदेश भेजा कि उनसे कहना कि उनकी पत्नी यशोधरा उनके जाने के बाद एक विधवा की तरह जीवन जी रही है। और अगर उन्हें कुछ प्राप्त हुआ है तो उसे अपने उत्तराधिकारी पुत्र और पत्नी से आकर बाँटें।

लालउदायी भी बौद्ध-विहार में जाकर, वहाँ मुंड मुड़ाकर बौद्ध संघ में शामिल हो गया। पर एक दिन अवसर पाकर उसने शास्ता से कहा कि भिक्षु को सदैव एक ही स्थान पर नहीं रहना चाहिए। अत: सभी को अवसर निकालकर कपिलवस्तु चलना चाहिए। तथागत इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए और लालउदायी से कहा कि उनकी इच्छा भी थी और उनका कर्त्तव्य भी था कि वे कपिलवस्तु चलें। वर्षाकाल की समाप्ति के तत्काल बाद कपिलवस्तु चला जाए। उन्होंने यह भी कहा कि ज्ञान प्राप्ति के बाद किसी को यह अधिकार नहीं बनता कि वह दूसरों पर अपने ज्ञान के गर्व का प्रदर्शन करे। हर व्यक्ति को अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञता का भाव ज्ञापन करना चाहिए क्योंकि माता-पिता के सौजन्य से ही वह शरीर प्राप्त हुआ है, जिससे ज्ञान की प्राप्ति हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्ध का ज्ञान सामान्य जन के लिए भी मार्गदर्शन करता है। वे सैद्धान्तिक बातों के पचड़े में नहीं पड़ते हैं बल्कि व्यावहारिकता के आधार पर ही बातें करते हैं।

गाथा: पुञ्ञंचे पुरिसो कयिरा, कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ, सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ।। 118।।

अर्थ: यदि मनुष्य पुण्य करता है तो उसे पुण्य को बार - बार करना चाहिए । उसे पुण्यकर्म में संलग्न रहना चाहिए क्योंकि पुण्यकर्म का संचय सुखदायी होता है ।

पुण्य का संचय हितकारी होता है
लाजदेव पुत्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजगृह के पिप्पलीगुहा में सात दिनों की साधना के बाद उठने पर महाकाश्यप ने दिव्य चक्षु द्वारा एक स्त्री को खेत में चिउड़ा (लाजा)बनाते हुए देखा। उसके अन्दर विद्यमान श्रद्धा को देख वे भिक्षाटन हेतु उसके पास गए । उस स्त्री ने भिक्षु को भोजनदान देते समय , हृदय से गद्‌गद होकर , प्रार्थना की कि आपके धर्म में मैं भी भागी होऊँ । स्थविर ने उसकी मनोकामना पूर्ति का आशीर्वाद दिया। प्रसन्नचित्त, ध्यानमग्न हो जब वह वापस जा रही थी तो मार्ग में एक सर्प ने उसे डंस लिया। वह मर गई और उसने त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक में जन्म लिया। वहाँ उसे अत्यधिक ऐश्वर्य प्राप्त हुआ जिसे पाकर उसने सोचा कि यह महाकाश्यप के आशीर्वाद से ही प्राप्त हुआ है । अतः मुझे स्थविर की सेवा करनी चाहिए ताकि इस पुण्यप्रताप को चिरस्थायी बना लूँ । ऐसा सोचकर उसने प्रातः काल ही झाड़ू लेकर महास्थविर के निवास स्थान की सफाई कर दी; साथ ही हाथ धोने के लिए जल तथा पीने के जल की भी व्यवस्था कर दी । जब स्थविर ने इसे देखा तो सोचा कि किसी सामनेर ने यह कार्य किया होगा । दूसरे दिन भी आवास की सफाई हुई और उन्होंने फिर वही अनुमान लगाया।तीसरे दिन स्थविर ने झाड़ू लगाने की आवाज सुनी तो आवाज देते हुए पूछा कि कौन झाड़ू लगा रहा है । लाजदेवधीता ने उत्तर दिया,"मैं आपकी शिष्या लाजदेवधीता हूँ।" "पर मेरी तो इस नाम की कोई शिष्या नहीं है", स्थविर ने कहा । तब लाजो ने अपने विषय में बताया कि किस प्रकार उसने स्थविर को दान दिया था , सर्प दंशन से उसकी मृत्यु हुई तथा स्वर्गलोक में उसने जन्म लिया। इसे सुन, स्थविर ने लाजो को चले जाने के लिए कहा । लाजो बहुत दुःखी हुई और आग्रह करती रही पर स्थविर न माने । उन्होंने उसे समझाया कि एक देवपुत्री के लिए महाकाश्यप के यहाँ आकर उनकी निजी सेवा करना उचित नहीं है । लोगों को पता चलेगा और इस पर तरह-तरह की चर्चा होगी । वह रोती हुई बहुत समय तक खड़ी रही ।

बुद्ध गंधकुटीर में विद्यमान थे। लाजो को सांत्वना देने हेतु उसके सम्मुख प्रकट हुए तथा समझाया कि महाकाश्यप का उद्देश्य तुम्हें चोट पहुँचाना नहीं है । उसका उद्देश्य इन्द्रियसंयम है । वह किसी को कुछ भी बोलने का अवसर नहीं देना चाहता । दूसरी ओर तुम्हारा उद्देश्य पुण्य प्राप्त करना है क्योंकि तुम जानती हो कि पुण्य कर्म लोक और परलोक दोनों में ही लाभदायी होता है ।

टिप्पणी: किसी कार्य को बार-बार करने से उसकी आदत पड़ जाती है और वह हमारे व्यक्तित्व का अंग बन जाता है । गाथा 117 में बुद्ध ने सीख दी है कि अगर अन्जाने में कहीं कोई पाप हो जाए तो इंसान को उससे सबक लेनी चाहिए, सावधान हो जाना चाहिए तथा उसकी पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए। प्रथम अध्याय "युग्मवर्ग"की गाथा की तरह बुद्ध यहाँ समझाते हैं कि अगर पुण्य करने का अवसर मिले तो उसकी बार-बार पुनरावृत्ति करनी चाहिए। इस लोक तथा परलोक दोनों में ज्ञानीजन पुण्य की महिमा जानते हैं। अतः पुण्य करने का कोई भी अवसर गँवाना नहीं चाहते, जैसे लाजो स्थविर की सेवा का अवसर गँवाना नहीं चाहती थी ।

अगर हम निरंतर सद्‌कार्य करने की आदत डालें तो निश्चय ही हमारा समाज सुधर जाएगा । कहावत भी है- " करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान, रस्सी आवत जात से, सिल पर पड़त निशान" अर्थात् अभ्यास से ही सब कुछ होता है। अगर हम अच्छी आदतों के बीज बोयेंगे, अच्छे संस्कारों का सृजन करेंगे तो निश्चयतः एक न एक दिन अच्छे और मधुर फल प्राप्त करेंगे। दूसरी ओर अगर बुरी आदतों का बीज बोयेंगे, बुरे संस्कारों का सृजन करेंगे तो निश्चयतः एक न एक दिन बुरे और कड़वे फल प्राप्त करेंगे।

फल कैसा प्राप्त करना है - मीठा या कड़वा; यह पूर्णतः हमारे ऊपर निर्भर करता है। अगर हमने अच्छे या बुरे बीज बोये और उससे तुरंत अच्छे या बुरे फल प्राप्त नहीं हुए तो यह नहीं समझना चाहिए कि हमें अच्छे या बुरे फल प्राप्त नहीं होंगे। अच्छे या बुरे फल, प्राप्त होंगे जरूर, आज हो, कल हो, या हो परसों।

चीन में एक बाँस का पेड़ होता है। जब उसका बीज धरती में बोया जाता है तो पाँच वर्षों तक कोई भी अंकुर बाहर नहीं निकलता मगर पाँचवें वर्ष एकाएक वह बाँस-वृक्ष 10-15 फीट की ऊँचाई तक बढ़ जाता है।

इससे हम किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ? क्या वह बीज 5 वर्षों तक मरा हुआ था ? नहीं, वह पूर्णतः जीवित था। इसी प्रकार यदि हमारे कर्म तत्काल फल नहीं लाते तो यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वे कभी भी फल नहीं लाएंगे। अपना बोया हुआ हम स्वयं काटेंगे - आज, कल या परसों और काटना हमें ही पड़ेगा। कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अतः यह पूर्णतः हमारे हाथ में है कि हम किस प्रकार के भविष्य का सृजन करें।
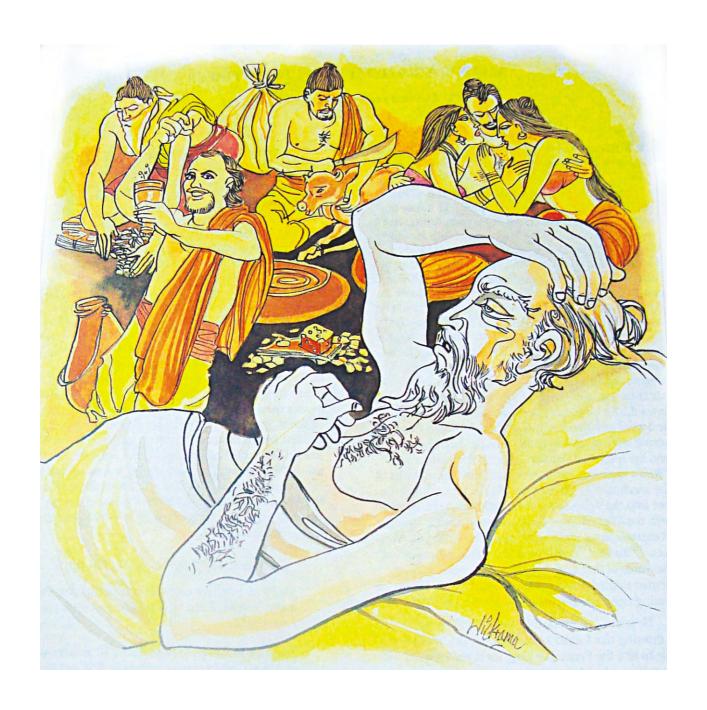
गाथा: पापोपि पस्सति भद्रं, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथो पापो पापानि पस्सति।। 119।।

अर्थ: पाप कर्म करने वाले को पाप कर्मों में तबतक बुराई नहीं दिखती जबतक उसे उसका परिणाम नहीं मिलने लगता है । जैसे ही पाप का परिणाम मिलने लगता है पाप के फल को भोगने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है ।

पाप पक जाने पर दु:ख देने लगता है
अनाथपिंडिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के अनन्य भक्त अनाथपिंडिक ने 54 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से जेतवन विहार का निर्माण कर बुद्ध को समर्पित कर दिया था । वह दिन भर में तीन बार बौद्ध विहार जाया करता था । वह जब भी विहार जाता अपने साथ भिक्षुओं के लिए कुछ न कुछ सामान अवश्य ले जाता ।

समय का क्रम चलता रहता है । सभी समय एक जैसा नहीं रहता । अनाथपिंडिक के साथ भी यही हुआ। अब उसके पास उतना धन नहीं रहा। एक बार बुद्ध ने उससे पूछा कि तुम्हारा दान कैसा चल रहा है । इस पर अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया कि आर्थिक तंगी के कारण अब वह साधारण किस्म की खाद्य सामग्री का ही दान कर पा रहा है । बुद्ध ने उसे हतोत्साहित होने से रोका तथा समझाया कि अगर हृदय में श्रद्धा और पवित्रता हो तो बुद्ध को दिया जाने वाला भोजन-दान कभी साधारण नहीं हो सकता।

एक बार जब बुद्ध और उनके शिष्य अनाथपिंडिक के निवास पर प्रविष्ट हुए तो गृह-देवी ने उन्हें रोकने की कोशिश की, पर वह सफल नहीं हुई। अत: रात्रि बेला में वह श्रेष्ठी के सम्मुख उपस्थित हुई, अपना परिचय दिया और उसे समझाने लगी कि बुद्ध और उनके शिष्यों के ऊपर व्यर्थ में पैसे बरबाद करने से कोई लाभ नहीं है। इससे तो अच्छा है कि आप अपनी बुद्धि व्यापार में लगायें जिससे आपका और आपके परिवार का भी भला हो। अनाथपिंडिक तथागत का अनन्य भक्त था। अत: उसने उस गृह-देवी को स्पष्ट किया कि तुम्हारे जैसे हजारों देवी-देवता मिलकर भी मुझे बुद्ध के मार्ग से च्युत नहीं कर सकते। उस देवी ने चूँकि श्रेष्ठी को ठेस पहुँचाई थी अत: उसने उसे घर से निकाल दिया। उस देवी को अपने बच्चों के साथ घर छोड़ना पड़ा और अब वह घर से बेघर हो गई ।

गाथा: भद्रोपि पस्सति पापं, याव भद्रं न पच्चति
यदा च पच्चति भद्रं, अथ भद्रानि पस्सति।।120।।

अर्थ: शुभकर्म करने वाले को वे कर्म तब तक शुभ नहीं लगते जब तक उसे उनका फल नहीं दिखता। जब वह उनका फल देखता है तब उसे लगता है कि वह शुभ कर्म कर रहा था और तब उसे आनन्द की अनुभूति होती है ।

पुण्य पक जाने पर सुख देने लगता है
अनाथपिंडिक की कथा

वह नगर देवता के पास गई पर उसने मदद करने से मना कर दिया। घूमते-घूमते इन्द्र के पास गई और अपना दु:खड़ा रोया। शक्र ने भी बताया कि उसने भयंकर अपराध किया था । किसी में साहस नहीं था कि वह श्रेष्ठी के पास जाकर क्षमा याचना करे। पर शक्र ने एक विधि बताई जिससे वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त कर सकती थी। "तुम श्रेष्ठी के नौकर का रूप धारण करो और अपनी शक्तियों का उपयोग करो । महाजन के कर्जदारों ने 18 करोड़ रूपये ले रखे हैं । उन्हें उनसे वापस लेकर श्रेष्ठी के कोष में रख दो।" देवी ने वैसा ही किया । "18 करोड़ रूपये नदी में बह गए हैं और कहीं पड़े हुए हैं । साथ ही अन्य 18 करोड़ रूपये फलाँ जगह धरती में गड़े हुए हैं। उन्हें भी लाकर श्रेष्ठी के कोष में रख दो।" देवी ने वैसा ही किया और फिर श्रेष्ठी के सम्मुख प्रकट हो अपनी गलती के लिए क्षमा प्रार्थना की। साथ ही यह भी बताया कि श्रेष्ठी के कोष में 54 करोड़ रुपए की मुद्रा रख दी थी । अनाथपिंडिक ने सोचा कि इस देवी ने अपनी गलती पर प्रायश्चित किया है तथा 54 करोड़ रूपये भी कोष में रख दिये हैं । इसके विषय में शास्ता से राय लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उस देवी को साथ लेकर बुद्ध के सम्मुख उपस्थित हुआ। वहाँ पहुँचकर देवी से सभी कुछ स्पष्ट करने के लिए कहा। देवी शास्ता के चरणों पर गिर पड़ी और उनके विषय में अपशब्द कहने के लिए उनसे तथा श्रेष्ठी से क्षमा-प्रार्थना करने लगी।

तब तथागत ने दोनों को समझाते हुए बताया कि किस प्रकार भले-बुरे कर्मों का फल मिलता है । कभी-कभी बुरे कर्म का फल तुरंत नहीं मिलता । इसलिए बुरा कर्म करने वाला यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता कि वह बुरे कर्म कर रहा है । लेकिन जैसे ही वह बुरा कर्म परिपक्व हो जाता है तथा फल देने लगता है, उस मनुष्य को महसूस होता है कि बुरे कर्म का फल बुरा होता है । इसी प्रकार अच्छे कर्मों का फल भी तुरंत दृष्टिगत नहीं होता। इस कारण कर्त्ता को अच्छे और बुरे कर्मों में भेद पता नहीं चलता और वह अच्छे कर्म करने के प्रति प्रोत्साहित नहीं होता। लेकिन जैसे ही अच्छे कर्मों का फल मिलने लगता है , उसे प्रसन्नता की अनुभूति होने लगती है।

टिप्पणी: अनाथपिंडिक एक महान दानी था। वह "अनाथों को भोजन कराने वाला" के रूप जाना जाता था । अत: उसका नाम "अनाथपिंडिक" पड़ गया था ।

गाथा: माप्पमञ्ञेथ पापस्स, न मं तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भो पि पूरति ।
बालो पूरति पापस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं ।।121।।

अर्थ: यह पाप छोटा है इससे क्या नुकसान होगा। यह सोचकर समझदार आदमी को छोटे पाप की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जैसे जल की एक-एक बूंदे गिरने से घड़ा भर जाता है उसी प्रकार छोटा-छोटा पाप भी मिलकर एक दिन विशाल पाप समूह बन जाता है

पाप जमा होते-होते विशाल पुंज हो जाता है
असंयत भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बौद्ध विहार में एक भिक्षु छोटी-छोटी गलतियों पर ध्यान नहीं देता था। उदाहरण के लिए वह लकड़ी के बने मंचपीठ या अन्य सामग्री का इस्तेमाल करता था और उसे फिर सही स्थान पर नहीं रखता था। इस कारण वे वस्तुएं धूप तथा वर्षा में बाहर ही पड़ी रहती थीं तथा उन्हें दीमक खा जाते थे। अन्य भिक्षुओं ने उसकी लापरवाही देखकर उसे समझाने की कोशिश की पर वह समझने को तैयार नहीं था। अंततः बात शास्ता तक गई। शास्ता ने उस नवयुवक भिक्षु से पूछा की वह ऐसा क्यों कर रहा था। प्रत्युत्तर में युवक ने बताया कि उसका उद्देश्य सामान को बरबाद करना नहीं था। अगर मंचपीठ खुले में छोड़ दिया जाता था तो आखिर उसी दिन, उसी समय तो वह खराब नहीं हो जाता था और यह एक साधारण सी बात थी।

बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि जीवन में छोटी-छोटी चीजों पर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। छोटी-छोटी चीजें ही मिलकर बड़ी हो जाती हैं। समझदार व्यक्ति को छोटी-छोटी गलतियों की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए अगर हम एक घड़े को बारिश में बाहर रख दें तो वह तुरंत पानी की बूँदों नहीं से भर जाता। पर वही घड़ा अगर बाहर छोड़ दिया जाए तो कुछ समय बाद वह वर्षा की बूँदों से पूरी तरह भरकर लबालब हो जाता है।

मूर्ख व्यक्ति प्रमाद करते समय समझता है कि उसने जल के एक बूँद के समान प्रमाद किया है। वह प्रमाद एक बूँद के समान हो सकता है,पर लगातार किया गया प्रमाद अंततः बूँद भरे घड़े के समान हो जाता है। वह मूर्ख अपने लिए पापसमूह एकत्र कर लेता है। पाप के रूप में किया गया एक छोटा सा कार्य अंततः एक विशाल राशि में परिणत हो जाता है।

टिप्पणी : कोई भी बड़ा अपराधी एक दिन में पैदा नहीं होता। एक चोर को किसी कचहरी में चोरी की सजा सुनाई जा रही थी तब उसने जज से कहा कि उसके साथ-साथ उसके माता-पिता को भी सजा मिलनी चाहिए। जज द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि बचपन में जब उसने पहली बार पेंसिल चोरी की थी तो उसके माता-पिता ने उसे नहीं रोका था और इस प्रकार वह एक के बाद एक बड़ा अपराध करता गया।

पर्वत क्या है ? एक-एक राई के असंख्य कणों के समूह के अतिरिक्त क्या है ? अगर वे एक-एक कण न होते तो पर्वत कैसे होता ? उसी प्रकार बड़े पाप का समूह कैसे बन पाएगा अगर दिन-प्रतिदिन पाप नहीं किया जाएगा ?

गाथा: मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स, न मं तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरित ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं ।।122।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति को अपने अल्प पुण्य को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए कि इससे क्या फल मिलेगा ? जैसे बूँद-बूँद से ही घड़ा भर जाता है वैसे ही समझदार व्यक्ति अल्प-अल्प पुण्य करके अपार पुण्यराशि का संचय कर लेता हे ।

पुण्य करने में कृपणता न करें
विडालपादक श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी दिन जेतवन विहार में बुद्ध ने भिक्षुसंघ को प्रवचन दिया कि मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं भी दान दे तथा परिवार वालों को भी दान देने के लिए प्रेरित करे। ऐसा करके वह आने वाले जन्मों में स्वयं पुण्यफल प्राप्त करेगा और उसके परिवार वाले भी पुण्यफल प्राप्त करेंगे।

प्रवचन से प्रेरित होकर एक सद्पुरुष ने शास्ता को भिक्षुसंघ के साथ भोजन के लिए आमंत्रित किया । व्यवस्था हेतु गाँव में जा घोषणा की कि उसने सम्पूर्ण भिक्षुसंघ को भोजन हेतु निमंत्रित किया है। अत: हर व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दे ।

दान लेने की प्रक्रिया में वह व्यक्ति एक दुकानदार के पास भी गया । उस दुकानदार ने सिर्फ तीन अंगुलियों से चावल, मूँग तथा उड़द उठाकर दान में दिए । घी और मधु भी अलग से दो-दो बूँद दे दिया । साथ ही यह भी कहा कि मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भिक्षुओं को भिक्षादान दिया है । उपासक ने भी दी गई दान की वस्तुओं को अलग रख दिया । इससे दुकानदार को संदेह हुआ कि निश्चय ही यह आयोजक मेरी निंदा करना चाहता है । अत: दान दी गई वस्तु को उसने अलग रख दिया है । वस्तुस्थिति जानने के लिए उसने अपने नौकर को उस आयोजक के पीछे लगा दिया ।

नौकर ने आयोजक के घर जाकर देखा कि उसने दान में प्राप्त सभी वस्तुओं को एक में मिला दिया और भावना व्यक्त की कि श्रेष्ठी को भी इसका फल मिले । दाता को इससे संतोष न हुआ और उसने अपने वस्त्र में एक चाकू छुपा लिया और दर्शकों की श्रेणी में जा बैठा कि अगर उसने मेरी थोड़ी सी भी निंदा की तो मैं उसे छूरी मार दूँगा ।

शास्ता और भिक्षुसंघ को भोजन परोसने के बाद उपासक ने तथागत से निवेदन किया, "इस नगर के सभी निवासियों ने अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार दान दिया है । उन सभी नागरिकों को उनके दान का पुण्य प्रताप मिले।" ऐसा सुनकर उस कृपण श्रेष्ठी ने सोचा कि उपासक मेरे विषय में निंदा की कोई बात नहीं कर रहा है । वरन् यह मेरे लिए भी पुण्य की याचना कर रहा है । इसके विपरीत मेरे हृदय में इसके प्रति प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही है । अत: मैं अगर उससे क्षमा याचना नहीं करूँगा तो मुझे नरक में जाना पड़ेगा । ऐसा सोचकर वह उपासक के चरणों पर गिरकर माफी माँगने लगा ।

इस घटना को देखकर बुद्ध ने दानदाता से जानकारी प्राप्त की और फिर उन दोनों एवं भिक्षुसंघ को सम्बोधित करते हुए कहा, "पुण्य करने में मनुष्य को कृपणता नहीं करनी चाहिए। यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि यह तो छोटा पुण्य है । इसे करने से क्या लाभ ? छोटे-छोटे पुण्य ही विशाल पुण्यपुंज में परिणत हो जाते हैं। जैसे वर्षा के एक बूँद का महत्व नहीं दिखता है पर वर्षा की बूँदें जब लगातार घड़े में पड़ती हैं तो घड़ा भर जाता है । अत: किसी भी पुण्य को "थोड़ा " या "अधिक" से मापना उचित नहीं है । थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, मनुष्य को लगातार पुण्य-लाभ करते रहना चाहिए ।

टिप्पणी : संसार में क्या हमने कभी किसी को एक बार में ही करोड़पति या अरबपति बनते हुए देखा सुना है ? जो व्यक्ति आज करोड़पति है उसने कभी न कभी भूतकाल में एक रूपये से बचत की प्रक्रिया प्रारंभ की होगी । एक-एक रूपया मिलकर करोड़ बनता है । अत: पुण्य, दूसरों की भलाई, का काम अगर छोटे-से-छोटा भी हो तो उससे चित्त नहीं हटाना चाहिए और उसे तत्काल सम्पादित कर देना चाहिए ।
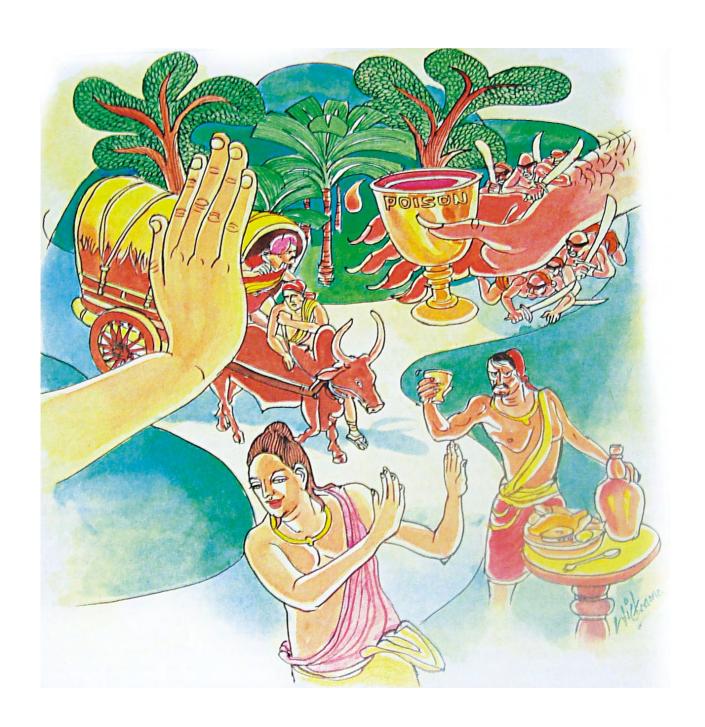
गाथा: वाणिजोव भयं मग्गं, अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामोव, पापानि परिवज्जये ।।123।।

अर्थ: जिस प्रकार धनी व्यापारी, कम सेवकों का साथ होने पर, डरता हुआ मार्ग बदल देता है उसी प्रकार समझदार व्यक्ति पापों को विष के समान समझकर त्याग देता है ।

पापों को विष समान जान, त्याग दें
महाधनिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक महाधनिक व्यापार करने हेतु 500 गाड़ियों के काफिले के साथ यात्रा पर जाने वाला था । उसने भिक्षुओं से भी आग्रह किया कि वे साथ चलें । रास्ते में वह भोजनादि की व्यवस्था कर देगा जिससे उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । अत: पाँच सौ भिक्षु भी उसके साथ हो लिए । रास्ते में एक जंगल पड़ता था । जंगल में प्रवेश के पहले वह व्यापारी बैलों को विश्राम देने हेतु 2-3 दिन रूक गया । भिक्षुओं को वह भोजनादि देता रहा । उधर 500 चोरों का एक समूह भी वन में छिपकर व्यापारी की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह आवे और वे उसे लूट लें । जब विलंब होने लगा तब चोरों ने अपने एक सहायक को गाँव में पता लगाने के लिए भेजा कि विलंब क्यों हो रहा है और व्यापारी आगे की यात्रा कब प्रारंभ करेगा ? उस दूत ने गाँव में जाकर व्यापारी के सहायक से पूछना प्रारंभ कर दिया कि आगे की यात्रा कब होगी ? सहायक ने उसे बता दिया कि आगे की यात्रा 2-3 दिनों बाद होगी । उसके प्रश्न करने पर कि वह ऐसा क्यों पूछ रहा था, चोर ने उस सहायक को सच्ची बात बता दी कि चोरों का एक समूह व्यापारी को लूटने के लिए वन में इंतजार कर रहा था । तब उस सहायक ने चोर से कहा कि चोरों को जाकर बता दो कि व्यापारी शीघ्र ही यात्रा पर निकलेगा । इधर व्यापारी का सहायक दुविधा में पड़ सोचने लगा कि मैं चोरों का साथ दूँ या व्यापारी का। अंत में उसने निर्णय लिया कि व्यापारी तो भिक्षुओं को भोजन दान भी दे रहा है और इस प्रकार सत्कर्म में संलग्न है । अत: उसने अपने स्वामी का साथ दिया और सच-सच बात बता दी । सच्चाई जानकार व्यापारी ने सोचा कि अब मुझे आगे जाने से क्या लाभ ? अब मैं घर ही लौट जाता हूँ । चोरों को पता चल गया कि अब वह घर लौटने वाला है। अत: उस मार्ग पर लूटने की तैयारी करने लगे । इधर व्यापारी को पुन: उनकी योजना का पता चल गया । अत: व्यापारी ने भी वापस जाने का इरादा छोड़ दिया तथा भिक्षुसंघ से आग्रह किया कि वे अगर रूकना चाहें तो रूक जाएं; अन्यथा जाना चाहें तो चले जाएं।भिक्षुगण वहाँ से प्रस्थान कर गए। श्रावस्ती आकर शास्ता को प्रणाम कर वहाँ बैठ गए । उन्होंने तथागत को संपूर्ण कथा सुना दी ।

बुद्ध ने उन्हें बताया कि जैसे महाधनी व्यापारी चोरों के भय से अपना मार्ग बदल देता है, जीवन जीने की चाह वाला व्यक्ति हलाहल विष त्याग देता है उसी प्रकार भिक्षु को भी पापकर्म का त्याग कर देना चाहिए।

टिप्पणी: महाधनी व्यापारी जब चोरों का सामना करने की स्थिति में नहीं रहता है तब वह खतरनाक रास्तों पर नहीं जाता क्योंकि उनमें उसे लूट लिए जाने का डर रहता है। जैसे जीवित रहने की चाह वाला व्यक्ति हलाहल विष से दूर रहता है, उसी प्रकार जीवन में कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को संकटमय मार्ग तथा हलाहल विष की तरह पापों का भी त्याग कर देना चाहिए । अगली गाथा का संदेश भी हलाहल विष के माध्यम से ही दिया गया है ।

गाथा: पाणिम्हि चे वणो नास्स, हरेय्य पाणिना विसं
नाब्वणं विसमन्वेति, नत्थि पापं अकुब्बतो ।।124।।

अर्थ: यदि हाथ में घाव नहीं हो तो उस हाथ में विष
लेने पर भी कोई असर नहीं पहुँचता; वह विष
कोई असर नहीं डालता । इसी प्रकार पाप न
करने की वृतिवाले जन को पाप नहीं लगता ।

कुशल चित्त को पाप कर्म प्रभावित नहीं करते
कुक्कुटमित्र निषाद की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में एक युवती अपने माता-पिता के साथ रहती थी । एक दिन उसे एक शिकारी दिख गया और वह उसे वह अपना हृदय दे बैठी । वह चुपके से अपने घर से निकल गई, उस निषाद का अनुसरण किया, दोनों ने विवाह कर लिया और साथ-साथ रहने लगे । बाद में उन्हें सात पुत्र हुए । समय के अन्तराल से उन्होंने उन पुत्रों का विवाह भी कर दिया ।

एक दिन शास्ता ने अपने ज्ञान चक्षु से देखा कि वह व्याध अपने परिवार के साथ आध्यात्मिक कल्याण की मनःस्थिति प्राप्त करने के निकट है। अतः बुद्व प्रातःकाल ही विहार से निकल गए और जंगल में वहाँ पहुँच गए जहाँ शिकारी ने जाल बिछा रखा था । वे जाल के पास ही एक झाड़ी में ध्यानमुद्रा में बैठ गये । थोड़ी देर के बाद शिकारी आया । अपने जाल में किसी शिकार को फँसा हुआ नहीं देखा । पास ही उसने कुछ पदचिन्ह देखा और उनका अनुसरण करता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ बुद्व ध्यानस्थ थे। उन्हें देखकर उसने सोचा कि इन्होंने ही संभवतः जाल में फंसे मृग को स्वच्छन्द कर दिया है या उसे फँसने नहीं दिया है । ऐसा सोच वह क्रोध से बुद्व के ऊपर तीर चलाने के लिए आतुर हुआ । पर जैसे ही वह धनुष से वाण खींचकर उसे छोड़ने जा रहा था, वह मूर्तिवत हो गया । उधर घर आने में विलंब होता देख माता ने पुत्र को पिता को ढूँढ़ने के लिए भेजा । पिता को मूर्तिवत्त एवं शास्ता को वहीं ध्यानस्थ देखकर निषाद पुत्र ने भी क्रोध किया और सोचा कि तथागत के कारण ही उसके पिता की यह गति हुई होगी। ऐसा सोचकर उसने भी उन्हें दंड देने हेतु वाण ताना । पर वह भी पिता की तरह स्थिर हो गया । फिर एक-एक करके सभी पुत्र पिता को देखने आए और स्थितप्रज्ञ हो गए । अंत में माता ने सोचा कि उसे जाकर देखना चाहिए । जैसे ही उसने अपने पति और पुत्रों को मूर्तिवत और वहीं पर शास्ता को ध्यानस्थ देखा, वह जोर से चिल्ला उठी, "रूको ! रूको ! मेरे पिता को मत मारो।" ऐसा सुनकर पति ने सोचा कि अरे ये तो मेरे श्वसुर हैं : इसी तरह पुत्रों ने भी सोचा कि ये तो मेरे नानाजी हैं; ऐसा होते ही उनके हदय में करूणा और मैत्री की धारा प्रवाहित होने लगी । बुद्व ने सोचा कि यही अवसर है जब उन्हें उपदेश ग्राह्य होगा । निषाद सपरिवार तथागत के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा उनसे क्षमा माँगी । बुद्व ने उन्हें धर्मोपदेश दिया और वे सभी स्रोतापन्न हो गए । निषाद की पत्नी पहले से ही स्रोतापन्न थी ।

उधर भिक्षाटन कर बुद्व जब विहार में पधारे तो उन्होंने आनन्द को प्रातःकाल की घटना से अवगत कराया । फिर धर्मसभा में चर्चा चली कि शिकारी की पत्नी प्रतिदिन उसे शिकार के काम में सहयोग करती थी । धनुष, वाण, भाला, जाल आदि लाकर अपने पति को देती थी और इस प्रकार उसके हिंसक कार्यों में सहायिका थी । प्रश्न उठा कि क्या स्रोतापन्न भी हिंसा करते हैं ? इस प्रश्न का समाधान देते हुए बुद्व ने समझाया कि स्रोतापन्न हिंसा नहीं करते हैं । वह मात्र अपने पति की आज्ञा का पालन करती थी । उसका चित्त अकुशल नहीं था कि वह जंगल में जाकर पशु -वध करे । शिकार के साधनों को देते समय उसके हदय में उन पशु-पक्षियों के प्रति कोई हिंसा की भावना नहीं होती थी । उसके मन में यह भी नहीं होता था कि उसका पति इन साधनों की मदद से जंगल जाकर पशु-पक्षियों का वध करे ।

जैसे हाथ में घाव न हो तो आदमी उस हाथ से अगर जहर उठा भी ले तो वह जहर कोई असर नहीं करता, उसी प्रकार कुशल चित्त को पाप कर्म प्रभावित नहीं करते । चूँकि उस महिला का चित्त कुशल था, उसमें अकुशल बातें नहीं उठती थीं, अतः धनुष-वाण एवं अन्य अस्त्र-शस्त्र देकर भी उस महिला ने अपने लिए बुरे कर्मों का सृजन नहीं किया ।

टिप्पणी : बुद्व ने मन की स्थिति पर सबसे अधिक जोर दिया है । मन की स्थिति कुशल है या अकुशल-इसी से निर्धारण होता है कि वह सद्कर्म का सृजन करेगा या बुरे कर्म का।

गाथा: यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातंव खितो ।।125।।

अर्थ: जो मूर्ख निर्दोष एवं पवित्र व्यक्ति पर दोष लगाता है, वह दोष उसी मूर्ख व्यक्ति को आकर नुकसान पहुँचा देती है जैसे हवा के विपरीत दिशा में धूल फेंकने पर वह धूल फेंकने वाले के ऊपर ही आकर गिर जाती है।

पाप न करें, यह आपका ही नुकसान करेगा
कोक लुब्धक एवं भिक्षु की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

कोक लुब्धक नामक एक शिकारी अपने कुत्तों की मदद से शिकार किया करता था। एक दिन जब वह शिकार के लिए निकला तो रास्ते में उसे एक भिक्षु दिख गया। भिक्षु को देखते ही उसके मन में क्रोध पूर्ण विचार आया कि आज इस भिक्षु को देखा है, आज शिकार में कुछ नहीं मिलेगा। संयोग की बात हुई कि उस दिन सचमुच शिकारी को शिकार में कुछ नहीं मिला। संध्या बेला जब वह शिकार से वापस आ रहा था तो संयोगवश उसे पुनः वह भिक्षु दिख गया। अब तो उसके क्रोध का पारावार ही नहीं रहा। उसने सोचा कि सुबह-सुबह इस भिक्षु के दर्शन के कारण ही मुझे आज शिकार में कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा सोचकर उसने भिक्षु को मारने के लिए उसके पीछे अपने कुत्तों को छोड़ दिया। भय से त्रस्त होकर भिक्षु पास के एक वृक्ष पर चढ़ने लगा, किन्तु शिकारी ने उसे नहीं छोड़ा। वह उसके पैर में तीर चुभोने लगा। भिक्षु को असीम पीड़ा होने लगी और अपने को बचाने के लिए वह इधर-उधर हिलने लगा। इस प्रक्रिया में उसका चीवर गिर गया और शिकारी उससे ढँक गया। कुत्तों ने समझा कि भिक्षु नीचे आ गिरा है। अतः वे उसपर टूट पड़े। भिक्षु को समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। अतः उसने पेड़ की एक सूखी डाल को तोड़कर नीचे की ओर फेंक दिया। तब कुत्तों को समझ में आया कि उन्होंने अपने मालिक पर ही आक्रमण कर दिया था। भौंकते हुए वे जंगल की ओर भाग गए।

भिक्षु नीचे उतरा तो उसने देखा कि लुब्धक के प्राण-पखेरू उड़ गए थे। उसे बहुत दुःख हुआ कि उसके चीवर से ढँक जाने के कारण ही शिकारी की मृत्यु हुई थी। अपने को दोषी मानता हुआ वह बुद्ध के सम्मुख प्रस्तुत हुआ तथा घटना क्रम बताया।

बुद्ध ने उसकी शंका का समाधान करते हुए बताया कि वह निर्दोष है। उसका शील भी भंग नहीं हुआ है। गलती शिकारी की थी। उसे वैसा नहीं करना चाहिए था। अपने दुष्कर्म के कारण ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। बुद्ध ने यह भी स्पष्ट किया कि पूर्व जन्म में भी कोक ने निरपराधी को दुःख पहुँचाने की प्रक्रिया में स्वयं को आघात पहुँचाया था।

टिप्पणी : अगर हम आकाश की ओर थूकेंगे तो थूक आकाश का कुछ नहीं बिगाड़ेगा। हाँ, वह थूक उस आदमी पर ही वापस आकर गिरेगा। अगर हम कीचड़ में पत्थर फेकेंगे तो कीचड़ हमारे ही वस्त्रों में लग जाएगा और उसे मलीन कर देगा।

गाथा: गब्भमेके उप्पज्जन्ति, निरयं पापकम्मिनो ।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा ।।126।।

अर्थ: कर्मों के आधार पर पुनर्जन्म होता है। संसार के साधारण प्राणी पुन: माता के कोख में जन्म लेते हैं। पाप करने वाले नरक जाते हैं तथा पुण्य करने वाले स्वर्ग। धर्मसाधक क्षीणास्त्रव स्थिति प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

सभी सर्वत्र अपना ही कर्मफल पाते हैं
मणिकार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक स्थविर एक मणिकार के यहाँ से अनेक वर्षों से भिक्षाटन कर रहा था। एक दिन मणिकार घर में माँस काट रहा था। उसके हाथ में खून लगा हुआ था । तभी राजा प्रसेनजीत के सिपाही एक मणि लेकर आए और तत्काल उसे पालिश करने के लिए कहा। मणिकार ने उसे हाथ में लिया तो मणि में खून लग गया। उसने मणि को मेज पर रखा और स्वयं हाथ धोने चला गया। इस बीच उसका एक पालतू क्रौंच पक्षी आया और उसने रक्तयुक्त मणि को देखकर समझा कि वह माँस है। अतः उसे निगल गया। जब मणिकार बाहर आया और उसने मणि नहीं देखी तो उसने अपनी पत्नी और बेटे आदि से पूछा; सबों ने कहा कि उन्होंने मणि नहीं लिया है। भन्ते से भी पूछा तो उन्होंने भी उत्तर दिया कि उन्होंने मणि नहीं उठाई थी। लेकिन इससे मणिकार संतुष्ट नहीं हुआ। उसने सोचा कि मेरे परिवार वालों ने मणि नहीं उठाया है और यहाँ अन्य कोई नहीं आया है। अतः उसने निष्कर्ष निकाला कि भिक्षु ने ही मणि लिया है। उसने इस विषय पर पत्नी से मंत्रणा की। पत्नी ने कहा कि भिक्षु हमारे घर वर्षों से आते रहे हैं और उन्होंने सदा हमारा कुशल चाहा है। अतः राजदंड स्वीकार है पर भन्ते पर संदेह करना अनुचित होगा। पर मणिकार नहीं माना और उसने भिक्षु को रस्सी से बांध दिया और खूब पिटाई की जिससे उसके शरीर से खून निकलने लगा। खून को पीने वह पालतू क्रौंच पक्षी फिर आ गया। मणिकार क्रोध में था, उसने ऐसी लात मारी कि पक्षी वहीं मर गया। भिक्षु यह सब देख रहा था। उसने मणिकार से प्रश्न किया कि क्या पक्षी मर गया। मणिकार क्रुद्ध तो था ही, उसने गुस्से में जोर से डाँटते हुए कहा, "हाँ मर गया है और तुम्हारी गति भी इसी प्रकार होगी।" जब भिक्षु को लगा कि पक्षी मर गया है तब उसने मणिकार को बताया कि इसी पक्षी ने मणि निगल लिया था। मणिकार ने उस पक्षी का पेट फाड़ा तो उसे मणि मिल गई। अब तो वह डर से काँपने लगा। वह भिक्षु के चरणों पर गिर गया और क्षमायाचना करने लगा। भिक्षु ने उसे बताया कि उसने उसे माफ कर दिया । इसमें उसका कोई दोष नहीं था, वह तो पूर्व जन्मों का फल था। मणिकार ने भिक्षु से कहा कि अगर भिक्षु ने उसे माफ कर दिया हो तो वह पहले की तरह ही भोजन दान हेतु आया करे। भिक्षु ने मणिकार को समझाया कि ऐसा नहीं हो सकता । भिक्षु को किसी भी गृहस्थ के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उसके घर में प्रवेश का ही नतीजा था कि उसकी यह दुर्गति हुई । ऐसा कहते हुए भिक्षु के प्राण निकल गए।

बुद्ध के यहाँ जब धर्मचर्या हुई तब चर्चा हुई कि किसने कहाँ जन्म लिया। मणिकार नरक में गया, अर्हत भिक्षु परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ, पत्नी देव लोक गई तथा पक्षी का मणिकार के पुत्र के रूप में जन्म हुआ।

टिप्पणी: भिक्षु ने पक्षी के मरने के बाद ही मणि का रहस्य क्यों बताया ? अगर भिक्षु ने मणि का रहस्य पहले ही खोल दिया होता तो मणि को प्राप्त करने के लिए मणिकार उस पक्षी का पेट फाड़ देता और उसकी मृत्यु हो जाती। भिक्षु अर्हत् था। वह अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठ चुका था। उसने मणि का राज नहीं खोला तो क्या हुआ? मणिकार ने उसकी पिटाई की और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

साधारण व्यक्ति और अर्हत में क्या अन्तर है ? साधारण व्यक्ति मात्र अपने लिए जीता है जैसा भिक्षु और मणिकार की कहानी से स्पष्ट है। अर्हत् "स्व" से ऊपर उठ गया होता है।

गाथा: न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थाट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ।।127।।

अर्थ: समुद्र, आकाश, पर्वत, गुफा - इस लोक में कोई ऐसा
स्थल नहीं है जहाँ छिपकर बैठने से अपने कर्मफल से
बचा जा सके।

पाप कर्म कर फल से नहीं बच पावोगे
तीन भिक्षु समूहों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक भिक्षु समूह भिक्षाटन कर विहार वापस लौट रहा था। रास्ते में एक जगह प्रचंड आग लगी हुई थी। भिक्षुओं के देखते-देखते एक कौआ उड़ता हुआ आया और उस ज्वाला में गिरकर मर गया। भिक्षुगण समझ नहीं पाए कि ऐसी दर्दनाक घटना क्यों हुई। उन्होंने शास्ता से इसका उत्तर पूछना चाहा।

भिक्षुओं का दूसरा समूह नाव से यात्रा कर रहा था। नाव चलती-चलती समुद्र में कहीं अटक गई। अथक प्रयास करने के बाद भी जब वह न चली तो यात्रियों ने सोचा कि निश्चय ही उनमें कोई अभागा था जिसके कारण नाव का चलना बंद हो गया था। लॉटरी निकाली गई । हर बार नाविक की पत्नी का नाम निकला। तब नाविक ने कहा कि इस स्त्री के गले में बालू का बोरा बाँधकर इसे समुद्र में फेंक दो। ऐसा ही किया गया और नाव चल दी। भिक्षुगण समझ नहीं पाए कि उस औरत की मौत इस तरह क्यों हुई? उन्होंने बुद्ध से इसका उत्तर जानना चाहा।

भिक्षुओं का तीसरा समूह कहीं जा रहा था। रात्रि में उसे कहीं पर विश्राम करना पड़ा। वे सभी एक गुफा में जा सो गए। सुबह में देखा कि गुफा के द्वार पर एक विशाल चट्टान पड़ी हुई थी। उससे बाहर निकलने का मार्ग अवरूद्ध हो गया था। उन्हें उस गुफा में सात दिनों तक रहना पड़ा और तब वे उस गुफा से बाहर निकल पाए। उन्हें समझ में नहीं आया कि भूतकाल के किस कर्म के कारण उन्हें उस गुफा में सात दिनों तक नजरबन्द रहना पड़ा। उन्होंने तथागत से शंका-समाधान चाहा।

बुद्ध ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर समझाया कि भूतकाल में एक किसान के पास एक आलसी बैल था। वह मन से काम नहीं करता था। एक दिन किसान को उस पर बहुत क्रोध आया और उसने पुआल में आग लगाकर उस बैल को जिंदा जला दिया। इस कारण उसे कौआ बनकर जन्म लेना पड़ा और इस जन्म में आग में गिरकर मरना पड़ा।

नाविक की पत्नी अपने पूर्व जन्म में एक महिला थी। वह जब भी अपने घर से निकलती, मुहल्ले का एक कुत्ता उसके साथ लग जाता था। लड़के उसको देखकर हंसते थे और उस महिला का मजाक उड़ाते थे। महिला उस कुत्ते से पिंड छुड़ाना चाहती थी पर वह किसी पूर्व जन्म में उसका पति था। अतः उस मोह के कारण उसका साथ नहीं छोड़ पा रहा था। उस महिला ने उस कुत्ते की हत्या करने की सोची। उसने उसे प्यार से पुचकारकर बुलाया, उसके गले में एक भारी पत्थर बाँधकर उसे पानी में फेंक दिया। कुत्ता डूबकर मर गया।

भिक्षुओं के तीसरे समूह ने एक बार ग्वाल बालों के रूप में खेल-खेल में एक छिपकली को एक बिल में बंद कर दिया। गलती से उसका दरवाजा खोलना भूल गए। सात दिनों के बाद जब याद आया तब उस बिल का दरवाजा खोला। छिपकली मृतप्राय हो गई थी। अपनी इस गलती के कारण इस जन्म में उन्हें भिक्षुओं के रूप में गुफा में कैद रहना पड़ा।

इन तीनों स्पष्टीकरण के बाद शिष्यों ने बुद्ध से पूछा कि पाप कर्म करके मनुष्य उसके फल से बच सकता है या नहीं ? मनुष्य अगर गुफा में छुप जाए, धरती से भागकर समुद्र में या पर्वत पर चला जाए या आकाश में पक्षियों की तरह उड़ जाए तो क्या वह अपने को अपने पाप के फल से बचा लेगा ? शास्ता ने भिक्षुओं को समझाया कि सृष्टि में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां छिपकर अपने पाप के फल से बचा जा सके।

टिप्पणी : हिंदू धर्म के अवतारों में एक नरसिंह अवतार का भी जिक्र आता है। भक्त प्रहलाद के पिता दैत्यराज ने घोर तपस्या की कि उसे कोई मार न सके - न अस्त्र से, न शस्त्र से; न नर, न पशु, न घर में, न बाहर; न धरती पर, न आकाश में; न दिन में, न रात में; आदि। उसे यह वरदान मिल भी गया। मृत्यु किसकी नहीं आएगी? जब दैत्यराज की मृत्यु आई तो नरसिंह अवतार के रूप में उसे मारा गया - आधा रूप पुरूष का था, आधा सिंह का; घर और बाहर में मारने के बजाय चौखट पर मारा गया; किसी अस्त्र या शस्त्र से न मारकर, बढ़े हुए शेर के नाखूनों से मारा गया। न तो धरती और न आकाश में मारा गया; वरन् नरसिंह की गोद में मारा गया । न तो दिन में और न रात में मारा गया, वरन् गोधूलि बेला में मारा गया। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि मृत्यु से कहीं भी बचा नहीं जा सकता। जैसे मृत्यु से कहीं भी बचा नहीं जा सकता, उसी प्रकार अपने पाप कर्मो के परिणाम से भी कहीं बचा नहीं जा सकता।

जैसे हमारी छाया हमारा साथ नहीं छोड़ती, उसी प्रकार हमारे कर्म भी हमारा साथ नहीं छोड़ते।

गाथा: न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितं नप्पसहेय्त मच्चु।।128।।

अर्थ: इस लोक में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ छिपने से मनुष्य मृत्यु से बच सके। आकाश में या पाताल में, पर्वत में और कंदराओं में - वह कहीं से भी समय आने पर आदमी को ढूँढ निकालेगी।

मृत्यु के प्रहार से कहीं भी नहीं बचोगे
सुप्रबुद्ध की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सुप्रबुद्ध, शास्ता की पत्नी, यशोधरा के पिता थे। वे मुख्यत: दो कारणों से तथागत से घृणा करते थे- एक कि उनकी बेटी यशोधरा को छोड़कर उन्होंने संन्यास ले लिया था और दूसरे उनका पुत्र देवदत्त, जो संन्यासी बन गया था, उसकी बुद्ध से नहीं बनती थी।

एक दिन बुद्ध भिक्षाटन पर जाने वाले थे। सुप्रबुद्ध को पता चल गया । अत: उसने उनका रास्ता रोकने की ठानी। उसने शराब पी ली और रास्ते को छेंककर खड़ा हो गया कि आज बुद्ध को नहीं जाने दूँगा। लोगों ने उसे बहुत समझाया पर उल्टा उसने उत्तर दिया, "जाकर कह दो कि वह पीछे चला जाए। वह मुझसे बड़ा नहीं है। इस प्रकार तथागत उस मार्ग से भिक्षाटन के लिए नहीं जा सके। बाद में सुप्रबुद्ध ने अपने जासूस भेजे कि जाकर देखें कि बुद्ध की क्या प्रतिक्रिया है।

उधर भिक्षाटन से लौटने पर बुद्ध ने आनन्द को सारी बातें बताई। उन्होंने आनन्द को यह भी बताया कि चूँकि सुप्रबुद्ध ने निर्वाण प्राप्त बुद्ध के मार्ग को अवरूद्ध किया था, अत: सात दिनों में उसकी मृत्यु हो जाएगी। सुप्रबुद्ध के दूतों ने यह बात उसे जाकर बता दी। उसने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया। उल्टे तथागत के प्रति उल्टी-सीधी बातें कही कि उसे मद हो गया है कि वह जो कुछ कहता है वह सही हो जाता है। "मैं ऐसा प्रबंध करूँगा कि उसकी बात असत्य साबित होकर रहेगी", सुप्रबुद्ध ने कहा। उसने उस सीढ़ी को तुड़वा दिया जिससे उतरकर उसे मृत्यु-स्थल को जाना पड़ता। अपने सेवकों को सख्त आदेश दिए कि अगर गलती से वह उधर जाने लगे तो वे उसे पूरी शक्ति से पकड़ लें। ऐसा कहकर वह ऊपर के कमरे में जाकर रहने लगा।

शास्ता को सुप्रबुद्ध के उपर्युक्त प्रबंध के विषय में बताया गया। उन्होंने यह सुनकर कहा, "बुद्धों का कथन असत्य नहीं हो सकता। सुप्रबुद्ध कुछ भी करे, वह महल में कहीं भी छिप जाए, आकाश में उड़ जाए, नाव पर बैठकर समुद्र विहार के लिए चला जाए, पर्वत की गुफाओं को अपना निवास-स्थल बना ले, उसे जो करना है कर ले; उसकी मृत्यु उसी तिथि पर और उसी स्थान पर सुनिश्चित है।" और हुआ भी वही। सातवें दिन शास्ता भिक्षाटन को निकले; उधर सुप्रबुद्ध का अश्व चंचल हो दीवार पर पैरों से जोर-जोर से प्रहार करने लगा। सुप्रबुद्ध ने यह आवाज सुनी। पहले भी वह घोड़ा अपने मालिक को देखकर शांत हो जाता था। सुप्रबुद्ध को कुछ याद नहीं रहा और वह अपने घोड़े की ओर भागा। प्रहरी भी सुध-बुध खो बैठे। उन्होंने राजा को नहीं रोका, राजा दौड़ता हुआ सीधा उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ सीढ़ियाँ बनी थीं और वहीं धरती पर जा गिरा। उसी स्थल पर उसकी प्राण-लीला समाप्त हो गई जिसका बुद्ध ने जिक्र किया था। धरती फटी और वह नरक में जा गिरा।

टिप्पणी: कोई व्यक्ति लाख चतुराई कर ले, किए गए कर्म का लेख मिट नहीं सकता। मृत्यु के आगे किसी का जोर नहीं चलता। मृत्यु की तिथि, स्थान को न हम बदल सकते हैं और न आप। कौन, कब, कहाँ, कैसे उठ जाएगा कोई नहीं जानता। अगर हम ऐसे असमर्थ हैं तब फिर अभिमान किस बात का ? "रस्सी की अकड़ किस बात की ?" रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ नहीं जाती है वैसे ही हमारी ऐंठ खतम क्यों नहीं होती ?

सामान्य जन के लिए मृत्यु एक भयावह चीज होती है। उसके भय को समाप्त करने का एक ही रास्ता है। उस स्रोत को बंद कर दिया जाए जहाँ से बुरे कर्मों का सृजन होता है। अर्थात् बुरे कर्मों के सृजन से बचकर ही हम मृत्यु के असर को कम कर सकते हैं और अंतत: निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

DHAMMAPADA

PAAP VAGGA

सपने में भी दुख न दें
धम्मपद
दंड वर्ग
गाथा और कथा
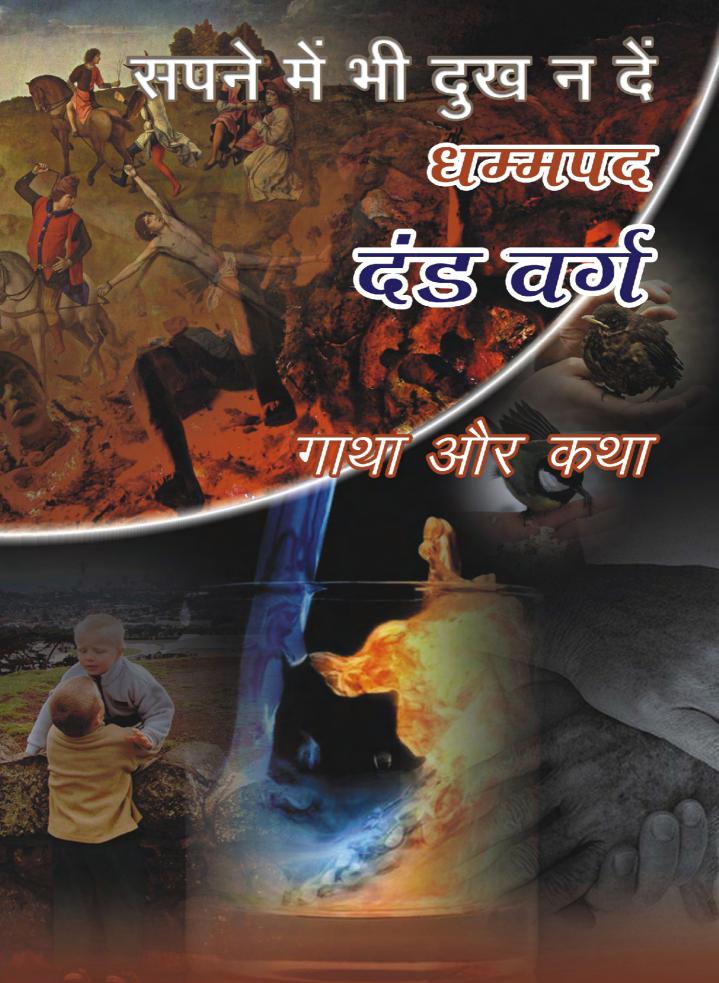
सपने में भी दुख न दें

धम्मपद

दंड वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

दण्ड वर्ग

गाथा: सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।। 129।।

अर्थ: हर व्यक्ति दण्ड से डरता है। हर व्यक्ति मृत्यु से भी भयभीत होता है। अत: सबों को अपने समान मानकर न तो किसी को मारना-पीटना चाहिए और न किसी की हत्या करनी चाहिए।

सपने में भी दुख न दें

षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय सत्रह भिक्षुओं का एक समूह अपने शयन के लिए जेतवन विहार में शयन लगा रहा था। उसी समय छः भिक्षुओं का एक दूसरा दल भी वहाँ आ पहुँचा। उसने पहले समूह से कहा कि वह अपने आवास के लिए अन्यत्र व्यवस्था कर ले। इस पर सत्रह भिक्षुओं के समूह ने आपत्ति की। तब षड्भिक्षुओं के दल ने उनसे कहा कि वे उनसे उम्र में बड़े हैं। अतः उन्हें शयन स्थल खाली कर देना होगा। सत्रह भिक्षु इसके लिए तैयार नहीं थे और वे अड़ गये। इधर छः भिक्षुओं का दल भी अपनी माँग पर अड़ा रहा। षड्भिक्षु शरीर से अधिक शक्तिशाली थे। जब बात बनती नजर नहीं आई तो षड्भिक्षुओं ने सत्रह भिक्षुओं की पिटाई शुरू कर दी। इस कारण वे जोर-जोर से रोने, चिल्लाने लगे।

शास्ता के कानों में आवाज पड़ी। उन्होंने पता किया कि क्या हो रहा है ? जब उन्हें सारी बात की जानकारी मिली तो उन्होंने षड्वर्गीय भिक्षुओं को बुलाकर बताया कि उन्होंने गलत किया है। अपने आचरण से उन्होंने अपने लिए दोषपूर्ण कर्म का सृजन किया है । उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि हर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि जैसा मैं हूँ वैसे ही अन्य भी हैं। अगर मुझे कष्ट होता है तो वही कष्ट दूसरों को भी होगा। अतः किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए, मारना-पीटना नहीं चाहिए।

टिप्पणीः इस घटना के बाद बुद्ध ने विनय का नियम बनाया कि कोई भिक्षु किसी भिक्षु के ऊपर हाथ नहीं उठाएगा। एक कहावत हैः 'जाके पाँव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई !' अर्थात् जिसके ऊपर स्वयं न बीती हो, वह दूसरों का दुःख कैसे समझ पायेगा ? अतः जीवन में जब कभी परीक्षा की घड़ी आए तो इंसान को समझना चाहिए कि दूसरे की जगह अगर वह स्वयं होता तो कैसा लगता? अगर यह उसकी समझ में आ जाएगा तो वह बहुत सारे गलत काम करने से बच जाएगा।

गाथा: सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।। 130।।

अर्थ: सभी प्राणी को दंड (प्रहार) भयभीत कर देता है क्योंकि सबों को उनका जीवन प्रिय है। ऐसा समझकर किसी को भी दूसरे पर प्रहार नहीं करना चाहिए और न किसी को प्रहार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

जीवन सभी को प्रिय है
षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

गाथा 130, पूर्व वर्णित गाथा 129 के विषयवस्तु से मिलती-जुलती है।

बुद्ध के समझाने पर षड्वर्गीय भिक्षुओं और सत्रह भिक्षु समूह के बीच शान्ति सुलह हो गई पर यह शांति और सुलहनामा कुछ ही दिनों तक चल पाया।

एक बार फिर दोनों समूहों के बीच शयनस्थान को लेकर झगड़ा हो गया। पिछली घटना के बाद शास्ता ने विनय का नियम दिया था कि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु पर हाथ नहीं उठायेगा। अतः इस बार जब झगड़ा हुआ तो षड्वर्गीय भिक्षुओं ने हाथ नहीं उठाया, पर इस बार उन्होंने अपने हाव- भाव से धमकाया। उन्हें इस प्रकार भयभीत किया कि वह समूह डर के मारे चिल्लाने लगा।

बुद्ध ने आवाज सुनी तो दोनों समूहों को बुलाया और विनय का नियम बनाया कि कोई भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को अपने हाव-भाव से नहीं डराएगा।

टिप्पणी: अगर हम एक छोटी सी चींटी को भी मारने के उद्देश्य से छेड़ते हैं तो वह तुरंत दूसरी तरफ भागती है। सिर्फ मनुष्य को ही नहीं, सभी प्राणियों को उनका जीवन प्रिय है। अगर कोई मेरा प्राण हरने आए तो मुझे कैसा लगेगा? अगर मुझे पीड़ा होती है तो मैं उस पीड़ा की अनुभूति क्यों नहीं कर पाता जो दूसरों को होगी, अगर उनका जीवन छीनने का यत्न किया जाए ?

दूसरी ओर हम प्राणियों की जान ले तो सकते हैं; चींटी, कीड़े-मकोड़ों को मार देना कितना सरल है पर सृष्टि के सभी वैज्ञानिक मिलकर भी आज तक एक जीवित कोशिका का सृजन नहीं कर पाए । अतः राजगृह में पशु-बलि को रुकवाकर बुद्ध राजा बिंबिसार को समझाते हैं कि जीवन ले लेना सरल है, पर जीवन का सृजन असंभव; अतः जीव हत्या पाप है।

बुद्ध के उपदेश का इतना गहरा असर हुआ कि उसी दिन राजा ने डौंडी पिटवाकर घोषणा करवाई, "अब तक भोजन के लिए तथा देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु-बलि होती रही है पर आज से पशु-वध वर्जित किया जाता है।" समस्त राज्य में, गंगा के तट पर भी, शिलालेखों पर राजा की उक्त घोषणा अंकित कराई गई।

गाथा: सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो न लभते सुखं।।131।।

अर्थ: जो व्यक्ति अपने सुख प्राप्ति के लिए अन्य
सुख चाहने वाले प्राणियों को मार देता है,
उसे मृत्यु के बाद सुख प्राप्त नहीं होता।

अगर सुख चाहते हों तो दूसरों को दु:ख न दें
बहुत से कुमारों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक बार बुद्ध भिक्षाटन हेतु निकले। मार्ग में उन्होंने कुछ लड़कों को डंडे से एक साँप को मारते हुए देखा। यह देखकर बुद्ध ने उन लड़कों से पूछा कि वे क्या कर रहे हैं। यह प्रश्न सुनकर लड़कों ने उत्तर दिया कि कहीं यह साँप हमें डँस न ले, इसी भय से उसे मार रहे हैं।

तब शास्ता ने उन्हें समझाया, "अपना वर्तमान काल सुखी बनाने के लिए तुम इस निरीह प्राणी को कष्ट दे रहे हो, ऐसा मत करो। ऐसा करके तुम अपने लिए भविष्य में दु:खों का सृजन कर रहे हो। दु:खों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान में बुरे कर्मों से बचा जाए। दूसरी ओर अगर वर्तमान में बुरे कर्म नहीं करते हो तो तुम्हें इस जीवन में भी सुख मिलेगा और आने वाले जीवन में भी सुख मिलेगा।" अत: अपने सुख की इच्छा करने वाले को निश्चय ही दूसरों को दु:ख पहुँचाने की इच्छा से बचना चाहिए।

टिप्पणी: कहावत है कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा आप अपने लिए चाहते हैं। यह उक्ति शत-प्रतिशत सही है।
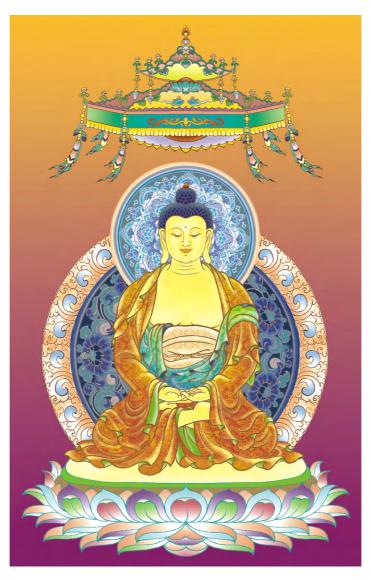
गाथा: सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो लभते सुखं।।132।।

अर्थ: जो व्यक्ति अपने सुख प्राप्ति के लिए अन्य सुख चाहने वाले प्राणियों को दंड नहीं देता, उसे मृत्यु के बाद सुख प्राप्त होता है।

दंड न दोगे तो सुख पावोगे
बहुत से कुमारों की कथा

जीवन एक घाटी की तरह है। घाटी में जो कुछ भी बोला जाता है, वही प्रतिध्वनित होकर वापस आता है। अगर हम कोई अच्छी बात बोलते हैं तो उस अच्छी बात की ही प्रतिध्वनि हमारे पास आती है। दूसरी ओर अगर हम कोई बुरी बात बोलेंगे तो बुरी बात ही हम तक लौटकर आएगी।

जीवन हमें वही देता है, जो हम जीवन को देते हैं। जीवन एक समुद्र की तरह है। किनारे से इसमें जो फेंकोगे, समुद्र उसे अपने पास नहीं रखेगा, वापस भेज देगा। अतः दैनिक जीवन में हम जो कुछ भी कर रहे हैं, उसका अति गहरा महत्व है।

एक गाँव की कहानी है। एक बूढ़ा आदमी चारपाई पर बैठा धूप सेंक रहा था। उधर से एक नवयुवक गुजरा। उसने बूढ़े बाबा से पूछा, "बाबा, इस गाँव के लोग कैसे हैं ?" "क्यों जानना चाहते हो ?", बूढ़े ने पूछा। "बसने के लिए एक गाँव की तलाश कर रहा हूँ।" "तुम्हारे पुराने गाँव के लोग कैसे थे?" "वहाँ के लोग अच्छे नहीं थे, मुझसे अच्छा व्यवहार नहीं करते थे।" वृद्ध ने उत्तर दिया, "इस गाँव के लोग भी अच्छे नहीं हैं।" युवक चला गया। कुछ समय बाद एक दूसरा युवक भी उधर से गुजरा। उसने भी बाबा से वही प्रश्न किया और प्रत्युत्तर में बाबा ने अपना प्रश्न दुहराया। तब उस युवक ने कहा, "वहाँ के लोग बहुत अच्छे थे, मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे।" "इस गाँव के लोग भी उस गाँव के लोगों की तरह अच्छे हैं," उसका उत्तर था।

जीवन हमें हमारे ही सिक्कों को लौटाता है।
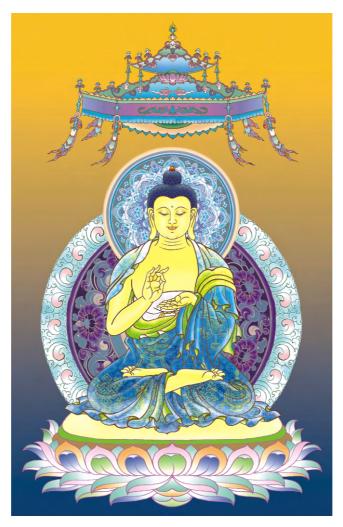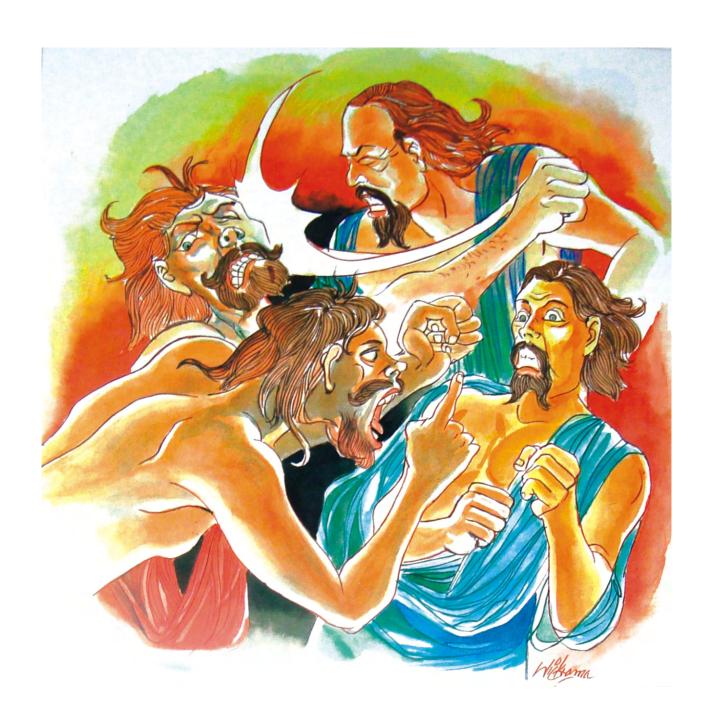
गाथा: मावोच फरुसं कञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा, पटिदण्डा फुससेय्यु तं।।133।।

अर्थ: किसी को कटु वचन नहीं बोलना चाहिए। कटु वचन बोलने से लोग भी प्रतिक्रिया स्वरूप कटु वचन बोलेंगे। इस प्रकार प्रतिक्रिया का वार्तालाप दुखदायी होता है और इससे हिंसा की आग उठती है।

कठोर वचन : दु:ख का कारण
कोण्डधानस्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोण्डधान स्थविर जब से प्रव्रजित हुए थे, लोग उनके साथ एक महिला को चलते हुए देखते थे लेकिन उन्हें यह महिला नहीं दिखती थी। लोग उन्हें भिक्षा देते समय कहते," भन्ते ! यह भिक्षा आपके लिए है और यह आपकी संगिनी के लिए है।"

यह सब पूर्वकाल के कर्मों के कारण हुआ था। कस्सप बुद्ध के समय में दो भिक्षु बड़े मित्रवत् थे, आपस में इतने निकट थे मानों वे एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हों। उनकी आत्मीयता देख स्वर्ग की एक देवी उनसे जलने लगी। उसने उन दोनों में फूट डालने की योजना बनाई, अत: एक दिन जब उन दोनों में से एक भिक्षु एक झाड़ी के पीछे लघुशंका के लिए गया तो उस देवी ने एक स्त्री का रूप धारण कर लिया। जब वह भिक्षु झाड़ी से निकला तो वह स्त्री भी उसके पीछे-पीछे हो ली। भिक्षु ने उस स्त्री को नहीं देखा। वह एक हाथ से अपने बाल सँवार रही थी और दूसरे हाथ से अपनी साड़ी ठीक कर रही थी। जब प्रतीक्षारत भिक्षु ने उस महिला को देख लिया तब वह अर्न्तध्यान हो गई। प्रतीक्षारत भिक्षु ने अपने मित्र भिक्षु से कहा, "बंधु ! आपसे यह उम्मीद नहीं थी । आपने अपना शील भंग कर दिया।" " मैंने कुछ भी नहीं किया, " उस भन्ते ने कहा। तब दूसरे भिक्षु ने स्पष्ट किया कि उसने अपनी आँखों से झाड़ी से एक महिला को साथ-साथ निकलते हुए देखा है। लाख स्पष्ट करने पर भी प्रतीक्षारत भिक्षु अपनी बात पर अड़ा रहा और उसने अपने मित्र से सारे संबंध तोड़ लिए। अब वह अकेला ही बैठकर साधना करता। जब उस देवी ने देखा कि दोनों के संबन्ध टूट गए हैं तो उसे बहुत दु:ख हुआ। वह उनके समक्ष प्रकट हुई और सब कुछ स्पष्ट किया, पर शक्की भिक्षु इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। फटे हुए दूध की तरह उनके सम्बन्ध फिर से जुड़ नहीं सके।

मृत्यु के बाद दोनों स्थविरों का जन्म देवलोक में हुआ। वह देवी नरक में जन्मी तथा समय के अन्तराल पर श्रावस्ती में जन्म लिया। प्रव्रजित होने के बाद, पूर्व जन्म के कर्मफल के कारण, उस काल्पनिक स्त्री का रूप सदैव उसके साथ-साथ चलता।

भिक्षुओं ने उस स्त्री के प्रसंग को अनाथपिंडिक और विशाखा - दोनों को बताया कि उस भिक्षु के ऊपर कार्रवाई की जाए, पर दोनों ने यही उत्तर दिया कि शास्ता विहार में विद्यमान हैं। अगर शिकायत करनी है तो उनसे जाकर करो।
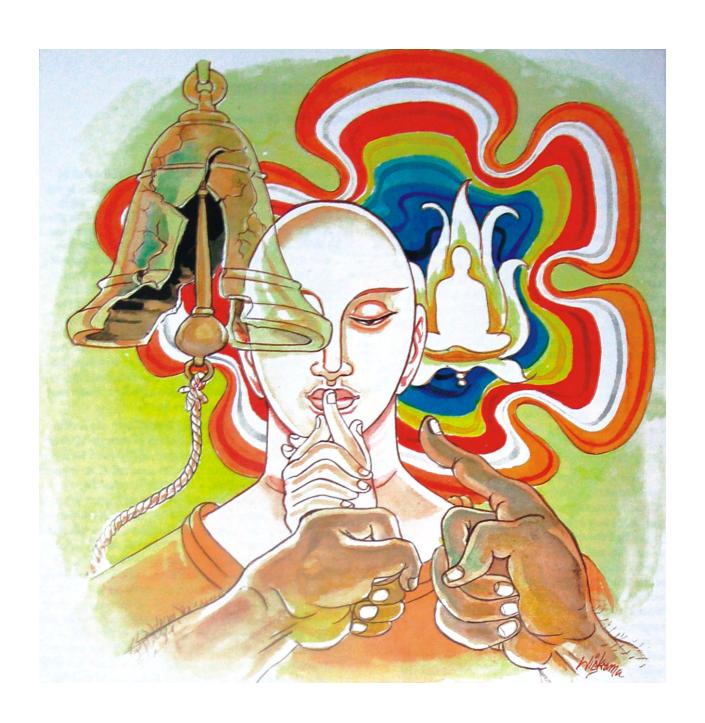
गाथा: सचे नेरेसि अत्तानं, कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बानं, सारम्भो ते न विज्जति।।134।।

अर्थ: अगर तुम अपने आप को टूटे हुए काँसे के बर्तन के समान कर लोगे तो नि:शब्द हो जाओगे और निश्चय ही निर्वाण को प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे अन्दर प्रतिहिंसा की भावना नहीं रह जाएगी।

कठोर वचन का घंटा तोड़ दें
कोण्डधानस्थविर की कथा

तब भिक्षुओं ने राजा प्रसेनजित से उस भिक्षु की शिकायत की कि वह अपने साथ एक स्त्री को लेकर घूमता है जो सर्वथा अनुचित है। राजा ने स्वयं इसकी जाँच करने का आश्वासन दिया और संध्या बेला में स्थविर के वासस्थान पर गया। राजा का आगमन सुन स्थविर अपने कमरे से बाहर निकला तो राजा को उसके साथ वह स्त्री दिखी। राजा ने उसको प्रणाम नहीं किया और थोड़ी देर बाद वह स्थविर अपने कमरे में चला गया। राजा उसके पीछे हो लिया तो कमरे में कोई स्त्री नहीं दिखी। राजा ने सोचा कि कहीं छिप गई होगी। अतः कमरे के अन्दर चारों ओर, बिस्तर के नीचे - सभी जगह खोजा, पर स्त्री नहीं दिखी। राजा ने तब उस स्थविर से पूछा कि वह स्त्री कहाँ है। उस स्थविर ने राजा को उत्तर दिया कि उसने किसी स्त्री को नहीं देखा है। राजा ने कुछ सोचकर भिक्षु को पुनः कुटिया से बाहर निकलने के लिए कहा। भिक्षु बाहर निकल आया तो राजा को वह स्त्री पुनः दिख गई। राजा ने पुनः उस घर में प्रवेश किया और स्थविर भी उसके पीछे प्रविष्ट हुआ। घर के अन्दर वह पुनः गायब हो गई। राजा को लगा कि किसी देवी ने काल्पनिक स्त्री का रूप धारण कर लिया है और वही इस भिक्षु के साथ घूमती है। राजा ने भिक्षु से कहा कि वह उसके राजमहल से भिक्षा ग्रहण किया करे, क्योंकि सभी लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उधर भिक्षुओं ने देखा कि राजा ने कोण्डधान स्थविर को सजा देने की बजाए, उल्टा उसे अपने राजमहल में बुलाकर सम्मानित किया तो उन्होंने उस भिक्षु को ही डाँटना शुरू कर दिया कि तुम कुण्ड हो, स्त्री को साथ लेकर चलते हो। प्रत्युत्तर में उस भिक्षु ने भी स्थविरों को कहना शुरू कर दिया कि कुण्ड तुम हो, स्त्रियों को साथ लेकर तुम चलते हो। आपस के इस वाद-विवाद की बात शास्ता तक पहुँची।

शास्ता ने सभी भिक्षुओं को बुलाया और उस भिक्षु से पूछा कि वह उन भिक्षुओं पर क्यों लांछन लगा रहा था ? उसने उत्तर दिया कि वे भी उसके ऊपर लांछन लगा रहे थे। तब बुद्ध ने उसे समझाया कि वे तुम्हारे ऊपर लांछन इसलिए लगा रहे थे कि उन्हेंाने तुम्हारे साथ स्त्री को देखा था। पर तुमने तो उनके साथ किसी स्त्री को नहीं देखा था; फिर तुम्हें उन पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए था। पूर्व जन्म में तुमने गलत कर्म किया था और उसी का फल आज भोग रहे हो। अब पुनः गलत काम करके अपने लिए क्यों पाप अर्जित करना चाहते हो, अपना भविष्य क्यों बिगाड़ना चाहते हो ? तुम्हें इन भिक्षुओं को कुछ नहीं कहना चाहिए, भले ही वे तुम्हें कुछ भी कहें। तुम्हारा मुँह फूटे हुए काँस के थाल की तरह होना चाहिए। जैसे फूटा हुआ काँस का थाल पीटने पर भी कोई आवाज नहीं करता, वैसे ही तुम्हें भी शान्त रहना चाहिए।
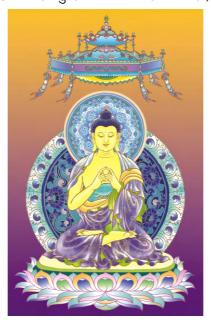
गाथा: यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं।।135।।

अर्थ: बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों को उसी प्रकार ले जाते हैं जैसे कोई ग्वाला लाठी से अपनी गायों को चारागाह में ले जाता है।

अपना गोपाल कौन है ?
उपासिकाओं की कथा

स्थान : पुब्बाराम, श्रावस्ती

एक बार महाउपोसथ के दिन पाँच सौ उपासिकाएं पुब्बाराम विहार में आईं; वे विभिन्न उम्र की थीं। विशाखा ने उनसे अलग-अलग पूछा कि वे उपोसथ उत्सव के लिए क्यों आई थीं ?

बूढ़ी स्त्रियों का उत्तर था कि वे मृत्यु के बाद स्वर्ग जाने की चाह से आई थीं। प्रौढ़ स्त्रियों ने उत्तर दिया कि वे अपने सौतन से मुक्त होना चाहती थीं। युवतियों का कहना था कि वे प्रथम संतान के रूप में पुत्र प्राप्त करना चाहती थीं। तरुणियों से जब पूछा गया तो उन्होंने बताया कि वे अच्छे पति की कामना से आई थीं।

विशाखा ने यह बात बुद्ध को बताई। तब बुद्ध ने विशाखा को समझाया कि हर प्राणी जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से बंधा हुआ है। इन तीनों का चक्र निरंतर चलता रहता है। जैसे एक चरवाहा अपनी लाठी से गायों को चारागाह की ओर ले जाता है उसी प्रकार आयु मनुष्य को जरा और मृत्यु की ओर ले जाती है।

टिप्पणी: हर व्यक्ति के जीवन का दृष्टिकोण भिन्न होता है। कोई धन की तलाश में दौड़ता है, तो कोई पद-प्रतिष्ठा के लिए। कोई सम्मान चाहता है, तो कोई ऐश्वर्य। बिरले ही कोई इस संसार के आवागमन से मुक्ति चाहता है। मुक्ति चाहने वाला भी संभवतः पूर्ण मुक्ति नहीं चाहता। सिद्धार्थ ने जब घर छोड़ा तब वे एक के बाद एक धर्मगुरुओं के पास गए और शीघ्र ही जितना कुछ वे सीख सकते थे, सीख लिया। "आगे क्या करना है ?" जब यह प्रश्न किया तो उन गुरुओं ने कहा कि मन की इसी स्थिति में रहकर आनन्दित होवो और जीवन का आनन्द लो। पर सिद्धार्थ इससे संतुष्ट नहीं हुए। वे पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे। अतः बोधिवृक्ष के नीचे जब सत्य का अन्वेषण कर लिया तभी वहाँ से उठे। ज्ञान प्राप्ति के बाद कुछ समय तक उसी मनः स्थिति में थे कि क्या किया जाए क्योंकि "पिंजड़े का द्वार खुला है पर पक्षी बाहर आना नहीं चाहता।" अंततः धरती ने कराह कर कहा, " सिद्धार्थ ! उठो ! तुम बुद्धत्व प्राप्त कर चुके हो। समस्त सृष्टि आग से झुलस रही है; तुम ही उस आग को बुझा सकते हो। अतः उस आग को बुझाने के लिए उठो।" इसके बाद बुद्ध ने सारनाथ जाकर पुराने पंचवर्गीय मित्रों को शिक्षा दी।

गाथाः अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो, अग्गिदड्ढोव तप्पति ।।136।।

अर्थः पाप करने वाला मनुष्य उन कर्मों को समझ नहीं पाता। दुर्बुद्धि वाला मनुष्य अपने पापों की अग्नि में उसी प्रकार जलता रहता है जैसे जंगल दावाग्नि से जलता रहता है ।

पापी : कर्म का फल कब समझोगे ?
अजगर प्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन राजगृह में महामोग्गलान थेर लक्ष्मण स्थविर के साथ गृध्रकूट पर्वत से उतर रहे थे। रास्ते में उनके चेहरे पर मृदु मुस्कान देख लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा। महामोग्गलान ने उन्हें बताया कि शास्ता के सम्मुख पहुँच कर यह प्रश्न करे।

अत: लक्ष्मण स्थविर ने विहार पहुँच कर शास्ता के सम्मुख यह प्रश्न किया। तब थेर महामोग्गलान ने समझाया कि उन्होंने एक अजगर प्रेत को देखा था जिसके शरीर से आग की ज्वाला निकल रही थी। उन्होंने आज तक इस प्रकार का कोई प्रेत नहीं देखा था। तब शास्ता ने बताया कि उन्होंने भी निर्वाण के समय इस प्रेत को देखा था पर इसकी चर्चा नहीं की थी, क्योंकि उन्हें लगा कि अगर इसकी चर्चा कर दी और किसी ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया तो उसका अनर्थ हो जाएगा।

उस प्रेत के उत्पति की कथा सुनाते हुए तथागत ने बताया कि कस्सप बुद्ध के समय एक बड़ा ही निर्दयी चोर था । एक धनवान श्रेष्ठी ने उसके विषय में कुछ कह दिया। इससे वह इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने उसके खेत में आग लगा दी । यह जानकर कि उस श्रेष्ठी को गन्धकुटी प्रिय थी, उस चोर ने गन्धकुटी में भी आग लगा दी और इस प्रकार अपने लिए अपार पाप का संचय कर लिया । उस पाप के फल के कारण - नरक में जाकर, आज उसने अजगर प्रेत के रूप में जन्म धारण किया था।

कर्मों के फल के विषय में बताते हुए शास्ता ने कहा कि पाप करते समय पापियों को समझ में नहीं आता कि वे पाप कर रहे हैं। बाद में वे उस पाप के फल से दावाग्नि की तरह जलते रहते हैं।

टिप्पणी: मूर्ख व्यक्ति क्रोधवश पापकर्म करता है, पर करते समय समझ नहीं पाता कि वह क्या कर रहा है। पाप करते समय वह इतना तो समझ जाता है कि वह पापकर्म कर रहा है पर वह यह नहीं समझ पाता कि उस पापकर्म का परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

इसलिए समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह सदैव अपने कर्मों को करने में सावधानी बरते।

प्रगति प्रकृति का नियम है । काँटा और फूल दोनों के बीज बोये जाते हैं और दोनों ही बीज से कली और फूल बनते हैं और फिर परिपक्व हो जाते हैं ।

फूल का बीज पुष्पित, पल्लवित होकर फूल ही रहेगा । दूसरी ओर काँटे का बीज बड़ा होते-होते एक विशाल काँटे के रूप में परिणत हो जाएगा, एक ऐसे काँटे में जिसके अन्दर सभी तरफ से चुभने की क्षमता होगी और यह त्रिशूल की तरह घात करेगा । हमने अगर फूल का बीज बोया तो हमारा कोई नुकसान नहीं हुआ पर जिसने काँटों के बीज बोये, उसका नुकसान ही नुकसान हो गया ।

कुदरत ने हमें स्वतंत्रता दे रखी है कि हम फूलों का बीज बोयें या काँटों का।

गाथा: यो दण्डेन अदण्डेसु, अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं, खिप्पमेव निगच्छति।।137।।

अर्थ: जो निर्दोष व्यक्तियों के साथ द्वेष रखता है
और उन्हें अकारण ही दुख पहुँचाता है वह स्वयं दस में
से किसी एक दंड का शिकार हो जाता है ।

किसी को दंड न दें
थेर महामोग्गलान की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

थेर महामोग्गलान तथागत के श्रेष्ठतम शिष्यों में माने जाते हैं। अगर थेर सारिपुत्र को उनका दायाँ हाथ कहा जाए तो महामोग्गलान को उनका बायाँ हाथ कह सकते हैं । दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही साथ आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कदम रखा । पूर्व जन्मों में भी दोनों साथ-साथ रहे। उनकी मैत्री संसार की सबसे पुरानी लिखित मैत्री के रूप में जानी जाती है । ऐसे महान साधक, महामोग्गलान का अंत अति दुःखद हुआ, यह किस बात का द्योतक है? अति कष्टप्रद अंत यह दर्शाता है कि कोई भी व्यक्ति इस संसार में कर्म फल से ऊपर नहीं है।

बुद्ध के जीवन की कहानी है । एक बार कोई व्यक्ति वहाँ आया जहाँ शास्ता प्रवचन दे रहे थे और आकर उन्हें भला-बुरा कहने लगा । शिष्यगण नाराज होते दिखे तथा प्रतिक्रिया में कुछ करने को उतावले हो उठे पर तथागत पूर्णतः शांत चित्त बैठे रहे। जब उस व्यक्ति ने अपशब्द कहना बन्द कर दिया तब बुद्ध ने उससे पूछा, "अगर तुम मेरे लिए कोई उपहार लेकर आओ और वह उपहार मुझे देना चाहो, पर मैं उस उपहार को स्वीकार न करूँ तो वह उपहार किसके पास रह जाएगा ?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "वह उपहार मेरे पास ही रह जाएगा।" "उसी प्रकार समझो कि तुम मेरे लिए गालियों का उपहार ले आए, लेकिन उस उपहार को मैंने स्वीकार नहीं किया तो वे अपशब्द किसके पास रहे ?", बुद्ध ने पूछा। "वे मेरे ही पास रहे", उस व्यक्ति का उत्तर था। बुद्ध ने प्रतिक्रिया व्यक्त न की क्योंकि वे बुद्ध थे। सामान्यजन से बहुत-बहुत ऊपर थे। बाद में उन्होंने अपने शिष्यों को बताया कि एक पूर्व जन्म में उन्होंने इस व्यक्ति को भला-बुरा कहा था। उसकी प्रतिक्रिया के रूप में उसने इस जन्म में बदला लिया था। अतः बुद्ध को कोई अधिकार नहीं था कि वे एक बार पुनः उस व्यक्ति के विरुद्ध दो शब्द कहें।

शास्ता के धर्म प्रचार में महामोग्गलान का बहुत बड़ा हाथ था। वे देवलोक जाते, लोगों को देखते जो मरणोपरांत देवलोक में पैदा हुए थे, उनके द्वारा किए गए कर्मों का पता लगाते और धरती पर आकर लोगों को बताते कि किन कर्मफलों से व्यक्ति देवलोक जाता है । उसी प्रकार निरय (नरक) लोक जाते, उन लोगों को देखते जो मरणोपरांत नरक में पैदा हुए थे। उनके किए गए कर्मों का पता लगाते और धरती पर आकर लोगों को समझाते कि किन कर्मफलों से व्यक्ति नरक जाता है ।

गाथा: वेदनं फरुसं जानिं, सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं, चित्तक्खेपं व पापुणे।।138।।

अर्थ: उसे (1) तीव्र कष्ट (2) नुकसान (3) अंग-भंग (4) भयंकर बीमारी या (5) पागलपन का शिकार होना होता है। वह इनमें से किसी विपत्ति से घिर जाता है ।

पाप सदैव पीड़ा देता है
थेर महामोग्गलान की कथा

इस प्रकार लोगों को पता चलता कि किन कारणों से वे सुख प्राप्त कर सकते थे और किन कारणों से दु:ख । इस बात को जानकर लोग उन्हें अति श्रद्धापूर्वक दान-दक्षिणा देते और उनकी प्रतिष्ठा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी ।

एक अन्य सम्प्रदाय के भिक्षुओं को लगा कि लोगों ने उनके पास आना बंद कर दिया है और इसका मुख्य कारण महामोग्गलान हैं। अतः उन्होंने आपस में बैठकर चर्चा की कि अगर किसी विधि से महामोग्गलान की हत्या कर दी जाए तो फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। अतः उन्होंने कुछ हत्यारों को इस काम पर लगाया और उन्हें हजार कार्षापण दे महामोग्गलान की हत्या की सुपारी दे दी। उन हत्यारों ने अपने काम को अंजाम देने के लिए महामोग्गलान के वास स्थान को चारों तरफ से घेर लिया पर महामोग्गलान अपनी दिव्य शक्ति से ताले के छेद से बाहर निकल गए। दूसरी बार फिर उन्होंने इसी प्रकार कोशिश की पर इस बार फिर वे छत में छेद कर निकल गये। जब तीसरी बार यही घटना हुई तो स्थविर ने सोचा कि कर्म के प्रारब्ध के कारण उनकी मृत्यु हत्यारों के हाथों ही लिखी है। अतः उन्होंने इस बार बचने की कोई युक्ति नहीं की। वे बहुत ही आसानी से उन हत्यारों द्वारा पकड़े गये। उन्होंने उनकी हड्डी-पसली एक कर दी और उनका चूरा बना दिया जैसे वे चावल के कण हों। उन्हें जंगल में फेंककर भाग गए।

महामोग्गलान तथागत के सर्वप्रिय शिष्यों में थे, शरीर त्याग कर इस जगत से विदा हो रहे थे, अपने गुरू की कृपा और दर्शनलाभ किए बिना वे शरीर कैसे त्याग सकते थे ? अतः उन्होंने अपने सूक्ष्म शरीर को गठित किया और शास्ता के सम्मुख प्रकट हुए। शास्ता के चरण स्पर्श कर अपनी इच्छा प्रकट की कि परिनिर्वृत्त होऊँगा। तब बुद्ध ने भन्ते को धर्म कथा सुनाने का आग्रह किया क्योंकि, "अब तुम्हारे जैसा शिष्य मुझे देखने को नहीं मिलेगा।" शास्ता का आदेश स्वीकार कर स्थविर ने तरह-तरह की ऋद्धि-सिद्धियां प्रदर्शित कर, धर्म कथा सुनाकर, तथागत को पुनः प्रणाम किया और परिनिर्वृत्त हो गये।

उधर महामोग्गलान की हत्या का समाचार पूरे राज्य में आग की तरह फैल गया। राजा अजातशत्रु ने हत्यारों की खोज करने के लिए गुप्तचर लगा दिए। प्रयत्न कर उन्होंने हत्यारों का पता लगा लिया। हत्यारों ने उन षड्यंत्रकारियों के विषय में बता दिया, जिन्होंने हत्या की सुपारी दी थी। राजा ने सभी को मृत्युदंड दे दिया ।
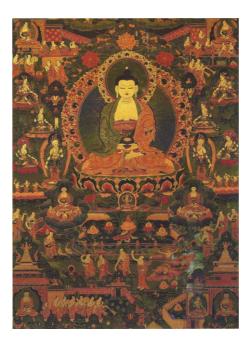
गाथा: राजतो वा उपस्सग्गं, अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं, भोगानं व पभंगुरं।।139।।

अर्थ: अन्यथा (6) उसे राजा या प्रशासन से दंड मिलता है (7) संसार में तीव्र निंदा होती है (8) उसके सम्बन्धियों का नाश हो जाता है या (9) उसके भोग-विलास की वस्तुओं का क्षय हो जाता है।

कर्मों के अनुरूप जीवन की प्राप्ति
थेर महामोग्गलान की कथा

मरणोपरांत संध्या काल में धर्मसभा बैठी । शिष्यों ने टिप्पणी की कि महामोग्गलान जैसे धर्मात्मा का इस प्रकार का दुःखद अंत नहीं होना चाहिए था । शिष्यों को स्वयं इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल रहा था । अतः उन्होंने बुद्ध से अपना शंका-समाधान चाहा ।

शास्ता ने उस दर्दनाक अंत का स्पष्टीकरण देते हुए समझाया, "निश्चय ही अगर हम स्थविर का अंतिम जीवन देखें तो उनका ऐसा अंत नहीं होता। पर कर्म सिर्फ एक जन्म से बँधा हुआ नहीं होता। वह तो प्रारब्ध से, पूर्व जन्मों में किए गए कर्मों से भी जुड़ा होता है।" ऐसा समझाते हुए बुद्ध ने स्थविर के पूर्व जन्म की एक कथा सुनाई जिसमें उन्होंने अपने निर्दोष तथा नेत्रहीन माता-पिता की बेरहमी से पीट-पीटकर हत्या कर दी थी।

पूर्व काल में महामोग्गलान का वाराणसी निवासी एक व्यक्ति के आज्ञाकारी पुत्र के रूप में जन्म हुआ था । उसके माता-पिता अंधे थे । पुत्र पूर्णतः समर्पित हो घर के कार्य करता था। माता-पिता ने उसके ऊपर काम का इतना बोझ देखकर सोचा कि इसके कामों में हाथ बँटाने वाली एक जीवनसंगिनी मिल जाए तो उचित होगा । अतः पुत्र के मना करने पर भी उन्होंने उसकी शादी कर दी, लेकिन पत्नी कर्कशा निकली । पहले तो उसने कुछ दिनों तक उनकी सेवा की पर बाद में अपने अन्दर उनके प्रति धधकती द्वेष की ज्वाला को रोक नहीं सकी । माता-पिता अंधे थे । वह अक्सर घर को गंदा कर देती और जब पति घर वापस आकर पूछता तो कहती कि इन अंधों ने घर को गन्दा कर दिया है । इस प्रकार उसने अपने पति के मन में विष का बीज बो दिया और सदैव उसमें खाद-पानी डालती गई । पुत्र सतर्क दृष्टि वाला नहीं था। स्त्री-सुख ने आँखों पर पर्दा डाल रखा था । विष-वृक्ष तो बड़ा होना ही था । वह हुआ, उसमें फल लगे और पके भी ।

पुत्र ने सोचा कि अच्छा हो कि माता-पिता से मुक्ति ही मिल जाए। अतः एक अवसर पर उसने अपने माता-पिता से कहा कि रिश्तेदारों से मिलने चला जाए। माता-पिता ने स्वीकृति भर दी। वह उन्हें बैलगाड़ी में बैठाकर ले जा रहा था। रास्ते में उसने स्वांग किया कि चोर आ गए। माता-पिता ने निश्छल हृदय से पुत्र को सलाह दी कि बेटे तुम अपनी रक्षा करो, हम तो बूढ़े हैं, हमारा कुछ नुकसान हो भी गया तो कोई परवाह नहीं है । कहा भी गया है :

माता न कुमाता हो सकती, पुत्र-कुपुत्र हो भले कठोर ।
सब देव-देवियाँ एक ओर, हे माँ मेरी तू एक ओर ।।
ले माँ का कलेजा भी काट निकाल तो,
उस कटे कलेजे से निकलेगा यही स्वर, "खुश रहो लाल।"

गाथा: अथ वस्स अगारानि, अग्गी डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जतिं।।140।।

अर्थ: अथवा अपने कृत पाप के प्रभाव से (10) उसका निवास जल जाता है और वह अल्पबुद्धि पुरूष मृत्यु के बाद नरक में जा गिरता है ।

दस दंडों के भागी बनेंगे
थेर महामोग्गलान की कथा

पुत्र ने अपनी आवाज बदल कर अपने माता-पिता को बेरहमी से पीटा, मानों चोर ही पीट रहे हों और उनकी हत्या कर दी । इस प्रकार एक सुशील, आज्ञाकारी पुत्र ने अपने सिर दुष्कर्म का विशाल बोझ ले लिया, जिसे अंतिम जीवन में जाकर ही संपूर्णतः उतार पाया।

सही कहा गया है "सतर्कता हटी, दुर्घटना घटी।"

सतर्क नहीं रहने के कारण, प्रमाद में लिप्त होने के कारण, नारी के जादू से वशीभूत हो जाने के कारण पुत्र की दुर्गति हुई। इस प्रकार की दुर्गति आज भी समाज में हो रही है जब हमारे सामने अन्धे, स्वार्थी, दोषपूर्ण पत्नी-भक्ति का पलड़ा पितृभक्ति से भारी पड़ रहा है और इस कारण समाज में विकृति बढ़ती जा रही है।

शास्ता ने शिष्यों को समझाते हुए बताया कि अपनी इस गलती के कारण महामोग्गलान अनेक जन्मों में दुःखद मृत्यु के शिकार हुए । उन चोरों और नग्नश्रमणकों ने भी अपने किए का फल पाया और नरक में गए । उन्होंने यह भी समझाया कि जो निर्दोष व्यक्ति को कष्ट पहुँचाता है वह शीघ्र ही एक या एक से अधिक दोष का शिकार हो जाता है :- (1) तीव्र पीड़ा (2) धन-हानि या असमय का बुढ़ापा (3) अंग-भंग (4) भीषण बीमारी (5) पागलपन (6) राजा का दंड (7) महान निन्दा (8) परिवार-कुटुम्बों का नाश (9) योगों का क्षय (10) घर का जल जाना।

शास्ता ने शिष्यों को समझाते हुए उक्त चार गाथाएं सुनाईं ।

टिप्पणी : हमने अक्सर कई लोगों को देखा है कि वे भलाई का जीवन जी रहे थे पर एकाएक उनके जीवन में अंधेरा छा गया । कठोर वेदना से पीड़ित हो गए, धन की हानि हो गई, अंग भंग हो गया, कुष्ठ रोग, पक्षाघात, यक्ष्मा, कैंसर आदि बीमारियाँ हो गईं। इन सबों का कारण उनके वर्तमान जीवन से नहीं निकाला जा सकता है। पर हम उनके द्वारा कृत भूतकाल के कर्मों को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे इस जन्म में घोर विपत्ति से क्यों घिर गए ।

गाथा: न नग्गचरिया न जटा न पंका, नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकंखं।।141।।

अर्थ: जिस मनुष्य के अन्दर की वासनाएं तृप्त नहीं हुई हैं वह कोई भी वाह्य कर्म करे - जैसे नग्न रहे, जटा बढ़ाए, शरीर पर कीचड़ लपेटे, उपवास करे, सख्त जमीन पर सोए, भस्म लगाए, उकड़ू बैठे- वह परिष्कृत, शुद्ध नहीं हो सकता ।

अर्थरहित साधना से क्या लाभ ?
स्थविर बहुभण्डिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उसने प्रव्रज्या ले ली। पर उसने अपने पुराने रहन-सहन के तौर-तरीके को नहीं बदला। अपने लिए एक विहार का निर्माण कराया जिसमें रसोई घर, भंडार घर आदि थे। उसने अपने साथ नौकर-चाकर भी रखे; उन्हीं से अपनी पसंद का भोजन बनवाता और आराम से खाता। अनेक वस्त्र बदल-बदल कर पहनता तथा नौकरों से तरह-तरह की सेवायें करवाता । इस प्रकार वह ऐशो- आराम का जीवन जी रहा था। चूँकि उसने बहुत सारी वस्तुऐं (भांड) एकत्र कर रखी थीं अतः लोग उसे बहुभन्डिक कहते थे। एक दिन भिक्षुगण उसे बुद्ध के पास ले गए और उन्हें बताया कि कैसे उसने बहुत सारी सामग्री एकत्र कर रखी थी। बुद्ध के पूछने पर उसने अपनी आदतों को स्वीकार कर लिया। तब बुद्ध ने उससे पूछा कि शास्ता तो सदैव सादा जीवन जीने पर जोर देते थे फिर उसने इतनी सांसारिक चीजें क्यों एकत्र कर रखी थीं। इस पर अपनी गलती मानने की बजाय बहुभण्डिक गुस्से से आग-बबूला हो गया और बुद्ध से कहा, "अब मैं वही करूँगा जो आप कहेंगे" और ऐसा कहते हुए उसने अपना चीवर जमीन पर फेंक दिया।

इसे देखकर बुद्ध ने उसे समझाते हुए कहा, "अपने पूर्व जन्म में तुम एक दुष्टात्मा थे पर उस दुष्टात्मा के रूप में भी तुम्हारे अन्दर थोड़ी बहुत लाज-हया बची थी, लेकिन अब भिक्षु बन जाने के बाद तुमने वह बची-खुची लज्जा भी क्यों गँवा दी; तुम्हारे अन्दर से लोक मर्यादा का भय भी कैसे गायब हो गया ?" जब उसने यह बात सुनी तो उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। वह लज्जित हो गया और लोक-मर्यादा के भय से बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा।

तथागत ने उसे समझाते हुए कहा, "भिक्षु का चीवर के बिना रहना उचित नहीं है; चीवर फेंकना सही नहीं है भिक्षु को अपने अन्दर से शंका-संदेह मिटाना चाहिए।"

टिप्पणीः अगर कोई सोचे कि वह वाह्यकर्मों को कर चित्तशुद्धि प्राप्त कर लेगा तो यह उसकी गलतफहमी है। केवल वाह्यकर्मों को करने से मन परिष्कृत नहीं हो पाएगा और उचित परिणाम नहीं मिलने से मन और दुःखी ही होगा । कहा भी गया है- "मन न रँगाय, रँगाय जोगी कपड़ा।" अर्थात् अगर मात्र वस्त्र को रंग दिया पर हृदय और मन का रूपान्तरण नहीं किया तो उससे क्या लाभ ? मन का मैल धुले बिना कुछ भी किया जाए, वह सब व्यर्थ है।

गाथा: अलंकतो चेपि समं चरेय्य, सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू।।142।।

अर्थ: मनुष्य आभूषणों से अलंकृत भी हो फिर भी यदि वह शांतिपूर्वक विचरण करता है, शांत, जितेन्द्रयी, संयमी और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला है: लोगों के प्रति दंड देने का भाव नहीं रखता: अपितु समस्त प्राणियों के प्रति दया-भाव रखता है तो उसे "श्रमण" भी कह सकते हैं, "ब्राह्मण" भी। उसे "भिक्षु" भी कहा जा सकता है।

संत तो संत ही है
सन्तति महामात्य की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सन्तति राजा प्रसेनजित का मंत्री था। एक बार राजा ने उसे सीमा पर विद्रोह शांत करने के लिए भेजा और उसने इस काम को बहुत ही कुशलता से किया। इससे राजा ने बहुत प्रसन्न होकर उसे अनेक भोग-विलास की वस्तुएं दीं तथा सात दिनों तक आनंद करने के लिए एक नर्तकी भी दे दी। वह सुरा और सुन्दरी का सात दिनों तक आनन्द भोग करता हुआ सातवें दिन आभूषण मण्डित, हाथी पर चढ़ा हुआ, स्नानघाट की ओर जा रहा था। उसी समय शास्ता भिक्षाटन हेतु जा रहे थे। मदमस्त सन्तति ने हाथी पर बैठे-बैठे, थोड़ा झ ुककर उन्हें प्रणाम किया। उसे ऐसा करते देख शास्ता ने मृदु मुस्कान से उत्तर दिया। उन्हें मुस्कुराते देख आनन्द ने शास्ता से इसका कारण पूछा। तथागत ने अपनी मृदु मुस्कान का कारण बताते हुए कहा, "आनन्द ! इस महामात्य सन्तति को देखो। यह आज ही समस्त आभूषणों से अलंकृत हुआ मेरे आश्रय में आएगा और अर्हत्व को प्राप्त होगा।" सामान्य लोगों को यह बात असंभव सी लगी तथा भिक्षुगण भी बहुत ही उत्सुकता से इस घटना की प्रतीक्षा करने लगे।

शास्ता को प्रणाम करने के बाद सन्तति घाट पर गया, वहाँ स्नान किया। भोजन और मदिरा में पुनः खो गया। नर्तकी उसके सम्मुख नृत्य प्रदर्शन में व्यस्त हो गई। वह लगन के साथ नृत्य कर रही थी। पर सात दिनों से लगातार नृत्य करने के कारण वह बहुत ही कमजोर हो गई थी। उसके पेट में अति तीव्र पीड़ा उठी और देखते ही देखते वह काल-कवलित हो गई।

सन्तति का नशा एक मिनट में उड़ गया। वह गहरे विषाद में डूब गया। उसे उससे बाहर निकलने का साधन नहीं दीख रहा था। उसे लगा कि शास्ता ही उसकी मदद कर सकते हैं। अतः उनके सम्मुख प्रकट हो, उन्हें साष्टांग प्रणाम कर आग्रह किया, "भन्ते ! मुझे इस पीड़ा से उबारिए। मुझे कोई मार्ग नहीं दिख रहा है।" तब बुद्ध ने समझाया, "सन्तति ! तुम सही जगह आ गए हो। अब तुम्हारे लिए चिंता का कोई विषय नहीं है क्योंकि यहाँ तुम्हें तुम्हारे दुख से मुक्ति मिल जाएगी। स्त्री के मरने पर तुम्हारी आँखों से निकला आँसू महासमुद्र के जल से भी अधिक होगा। पहले जो कुछ भी किये हो उसे सुखा डालो ताकि पीछे करने के लिए कुछ बच न जाए। इस प्रकार अगर ग्रहण न करोगे तो संसार में शांतचित्त विचरण करोगे।"

शास्ता का उपदेश सुनकर सन्तति ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। फिर उसने शास्ता से परिनिर्वाण की आज्ञा माँगी। बुद्ध ने उसे अपना पूर्वकर्म सुनाने को कहा। तब उसने अपनी पूर्वकथा सुनाई। उसके बाद उसने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।

धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं को यह बात आश्चर्यजनक लगी कि किस प्रकार आभूषणों से विभूषित होकर, संसार में लिप्त हुआ सन्तति भी निर्वाण प्राप्त कर गया।

बुद्ध ने इसे स्पष्ट किया कि वाह्य वस्त्र या आभूषण बहुत महत्व नहीं रखते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि आदमी ने रागाग्नि को शांत किया है या नहीं। अगर उसने रागाग्नि को शांत कर लिया है और किसी को कष्ट देने की इच्छा नहीं रखता है तो निश्चय ही ऐसा व्यक्ति श्रमण, ब्राह्मण और भिक्षु कुछ भी हो सकता है।

गाथा : हिरीनिसेधो पुरिसो, कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
सो निन्दं अपबोधेति, अस्सो भद्रो कसामिव।।143।।

अर्थ: संसार में लज्जायुक्त पुरूष अपनी निंदा को उसी तरह बर्दाश्त नहीं कर सकता जैसे अच्छी जाति का घोड़ा चाबुक की मार को नहीं सह सकता।

सही मार्ग पर चलें
पिलोतिक स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन आनन्द स्थविर ने एक छोटे लड़के को फटे कपड़ों में भीख माँगते हुए देखा। उसे देखकर उन्हें दया आ गई और उससे पूछा कि क्या भीख माँगने से प्रव्रज्या का जीवन अधिक अच्छा नहीं है। उस बालक ने कहा कि प्रव्रज्या का जीवन निश्चय ही अधिक अच्छा है पर उसे प्रव्रजित करेगा कौन ? तब भिक्षु आनंद ने प्रव्रज्या की औपचारिकताएं पूरी कर उसे प्रव्रज्या दिला दी। उसका पुराना वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता था। अतः सामनेर ने अपने पुराने वस्त्र तथा भीख माँगने के कटोरे को पेड़ की एक डाल पर टाँग दिया और विहार में रहने लगा। विहार में उसे भोजन की कोई परेशानी नहीं थी। अतः वह शरीर से मोटा होने लगा। उसका नाम पिलोतिक पड़ गया।

कुछ समय बाद उसके मन में आया कि विहार का जीवन बंधन का जीवन है। उसका पुराना जीवन ही अधिक अच्छा था। अतः वह उस पेड़ के पास जाकर अपने पुराने वस्त्र उठाने लगा। तब उसे अन्दर से ग्लानि हुई तथा उसके मन ने उसे धिक्कारा, "तू कितना निर्लज्ज है। यहाँ के इतने सुन्दर जीवन को छोड़कर तू फिर संसार के मायाजाल में फँस रहा है।" उस पुराने वस्त्र से प्रेरणा लेकर वह पुनः विहार में आ गया। उसका चित्त पुनः शान्त हो गया और वह साधना में लग गया।

कुछ दिनों बाद पुनः उसके मन में धर्म के प्रति अरुचि होने लगी और एक बार वह पुनः उस वृक्ष के पास पहुँच गया। फिर उसके मन ने धिक्कारा और वह पुनः विहार में वापस आ गया। इस प्रकार की प्रक्रिया चलती रही। उसके भिक्षु मित्र उससे पूछा करते थे कि वह कहाँ जाता था तो उसका उत्तर होता था, "अपने आचार्य के पास जा रहा हूँ।" समय के अन्तराल में साधना ने रंग दिखाया और पिलोतिक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। उसके बाद उसने उस पेड़ की ओर जाना बंद कर दिया। उसके मित्रों ने उससे फिर पूछा कि अब उसने उस वृक्ष की ओर जाना क्यों बंद कर दिया तो सामनेर ने अपनी प्रगति के विषय में बताया और यह भी बताया कि अब उसे किसी वाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं रह गई थी। भिक्षुओं ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और उसे बुद्ध के पास ले गए और बताया कि पिलोतिक कहता है कि उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। शास्ता ने उन शिष्यों को समझाया, "मेरा पुत्र पिलोतिक सच बोलता है कि उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। पहले उसे आलंबन की जरूरत थी तो वह उस वृक्ष की शाखा की ओर जाया करता था पर अर्हत्व प्राप्त करने के बाद उसे उधर जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है।"

गाथा: अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो, आतापिनो संवेगिनो भवाथ।
सद्धाय सीलेन च विरियेन च, समाधिना धम्मविनिच्छयेन च।।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता, जहिस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं।।144।।

अर्थ: चाबुक की मार पड़ते ही अनियंत्रित घोड़ा नियंत्रित हो जाता है। उसी प्रकार प्रमादित व्यक्ति को पाश्चाताप तथा वैराग्य के द्वारा अपने को नियंत्रण में लाना चाहिए। "श्रद्धावान, शीलवान बनकर अपने आप को धर्मनिष्ठ बनाओ तथा विद्वान बनो, ज्ञान को आचरण में उतारो और सदैव स्मृतिमान रहो। ऐसा करके तुम दुख रूपी भवसागर को पार कर सकोगे।"

बिना परिश्रम के भवसागर कैसे पार करेंगे ?
पिलोतिक स्थविर की कथा

टिप्पणी : अच्छे नस्ल का घोड़ा चाबुक पड़ने पर तुरंत उसका अर्थ समझता है और तुरंत अपनी गति में बदलाव लाता है और ऐसा अवसर नहीं देता कि उसके ऊपर फिर चाबुक पड़े। इसी प्रकार, सद्‌पुरुष अपने व्यवहार से ऐसा अवसर नहीं देता है कि लोग उसकी निंदा करें। पर इस प्रकार के व्यक्ति संसार में दुर्लभ हैं।

संसार में चार प्रकार के घोड़े होते हैं- कुछ घोड़े ऐसे हैं जिन्हें हम कितना भी चाबुक मारें, वे अनुशासनपूर्वक नहीं चलते हैं। दूसरे घोड़े चाबुक न मारे जाने पर थोड़ा इधर-उधर करते हैं, ज्यादा नहीं। तीसरे प्रकार के घोड़ों को चाबुक की जरूरत ही नहीं पड़ती। चाबुक की आवाज मात्र से ही वे सावधान हो जाते हैं। चौथे घोड़े चाबुक की छाया मात्र से ही संयमित हो जाते हैं।

मनुष्यों की स्थिति भी ऐसी ही है। किसी के अन्दर हया नाम की कोई चीज होती ही नहीं है। किसी के अन्दर थोड़ी बहुत हया होती है। दूसरे ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो सब कुछ गँवाने को तैयार रहेंगे पर अपनी आत्म-प्रतिष्ठा गँवाना नहीं चाहेंगे।

गाथा: उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारूं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ।।145।।

अर्थ: जैसे नहरों को बनाने वाले इच्छानुसार जल ले जाते हैं, बढ़ई कुशलतापूर्वक लकड़ी छीलकर रथ आदि का निर्माण करते हैं तथा बाण बनाने वाले सावधानी से बाण बनाते हैं, उसी प्रकार अनुशासित लोग अपने आत्मदमन में लगे रहते हैं।

ज्ञानी पुरुष स्वावलंबी होते हैं
सुख सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में सारिपुत्र के एक उपासक के घर में पुत्र पैदा हुआ। उसके गर्भ में आने के समय से ही परिवार में सुख छा गया। अतः उसका नाम "सुखकुमार" रखा गया।

सात वर्ष की आयु होने पर सुखकुमार ने अपनी माता से प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा जाहिर की। उसी दिन उसे अलंकृत कर, विहार में ले जाकर उसे प्रव्रज्या दिलाई गई। प्रव्रज्या दिलाने से पूर्व सारिपुत्र ने प्रव्रज्या से होने वाली कठिनाइयों से परिचित करा दिया पर सुखकुमार दृढ़निश्चयी था। उसने गुरू के प्रत्येक आदेश के पालन का आश्वासन दिया। उसके माता-पिता भी सात दिनों तक विहार में रहने के बाद अपने घर चले गए।

आठवें दिन सुख सामनेर सारिपुत्र स्थविर के साथ भिक्षाटन हेतु निकला। रास्ते में उसने देखा कि किसान खेतों में क्यारी बना रहे हैं और उन क्यारियों से जिधर भी जल ले जाना चाहते हैं, ले जा रहे हैं। वाण बनाने वाले भी बेंत को अपनी इच्छानुसार मोड़ रहे हैं और वाण बना रहे हैं। इसी प्रकार बढ़ई कठोर से कठोर लकड़ी को तराश कर रथ, चक्र आदि का निर्माण कर रहे हैं। इन सभी को देखकर सामनेर ने एक पंडित सामनेर की तरह प्रश्न किया, "क्या कोई भी व्यक्ति इन निर्जीव वस्तुओं को जैसा भी रूप देना चाहे, दे सकता है ?" सारिपुत्र ने समझाया, "अवश्य ! अपने प्रयत्न से मनुष्य सभी कुछ कर सकता है।"

सुख सामनेर की अन्तर्दृष्टि खुल गई। उसने सारिपुत्र भन्ते से आग्रह किया कि वे उसे विहार वापस जाने की अनुमति दें। सारिपुत्र ने उसे अनुमति दे दी। वह बौद्ध विहार आकर समाधि में बैठ गया। बुद्ध ने और शक्र आदि देवताओं ने देखा कि सुख सामनेर के अर्न्तनेत्र खुलने का समय आ गया है। अतः उन्होंने विहार के बाहर खड़े रहकर सामनेर की रक्षा की कि कोई उसके ध्यान में बाधा नहीं पहुँचाए। इस प्रकार ध्यानस्थ हो सामनेर को अन्तर्दृष्टि मिल गई। वह अर्हत हो गया।

संध्या बेला में धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं को शास्ता ने सामनेर के अर्हत प्राप्ति के विषय में बताया तो सभी भिक्षु बहुत आश्चर्यचकित हुए। शाक्य मुनि ने उन्हें समझाया कि आश्चर्यचकित होने की कोई बात नहीं है। पुण्यवान व्यक्ति जब श्रमणधर्म में लीन हो जाते हैं तब देवता और मनुष्य सभी उनकी सहायता करते हैं। "आज इन्द्र ने ही नहीं, मैंने भी स्वयं सामनेर की कुटिया के बाहर खड़े होकर उसकी रक्षा की ताकि उसको किसी प्रकार का व्यवधान न हो। सारिपुत्र को भी निर्देश दिया कि उनसे भी सामनेर को किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे।" शास्ता ने यह भी स्पष्ट किया, "आज सामनेर किसानों को क्यारी बनाते हुए, बाण बनाने वालों को बेंत से बाण बनाते हुए तथा बढ़इयों को लकड़ी से रथ आदि बनाते हुए देखकर चिंतन में डूब गया। उसने अनुभूति की कि यदि इन निर्जीव चीजों को अपनी इच्छा से रूप दिया जा सकता है तो निश्चय ही दृढ़निश्चयी पुरुष अपने आप को संयमित कर, अपना दमन कर आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।" इन आलम्बनों के सहारे आज सुख सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

DHAMMAPADA

DANDA VAGGA

बुढ़ापा आने से पहले
क्या करें ?
धम्मपद
जरा वर्ग
गाथा और कथा
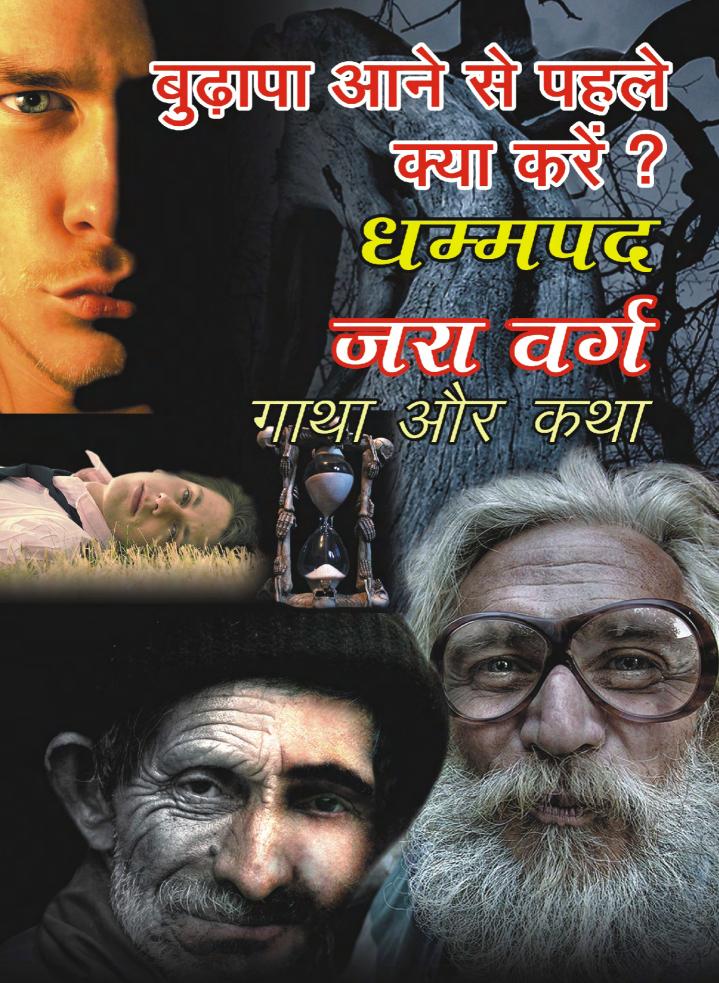
बुढ़ापा आने से पहले क्या करें ?

धम्मपद

जरा वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

जरा वर्ग

गाथाः को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथा ।। 146 ।।

अर्थः यह सम्पूर्ण संसार रागाग्नि से अनंत काल से जल रहा है । ऐसी स्थिति में तुम्हारा यह आनन्द करना, हँसना किस बात के लिए है ? अविद्या के अंधकार में तुमलोग अपने आत्मज्ञान के लिए दीपक की खोज क्यों नहीं करते ?

अँधेरे में क्यों हो ?
विशाखा की सहेलियों की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के कुछ पुरूषों ने अपनी पत्नियों को विशाखा की तरह दयालु एवं धर्मपरायण बनाने हेतु, विशाखा को अभिभावक बना, उनके पास भेज दिया। एक दिन नगर में एक उत्सव का आयोजन हुआ और पुरूषों ने मद्यपान किया। बाद में बची शराब का उन स्त्रियों ने भी सेवन कर लिया और होश-हवास खो बैठीं । उनके पति को पता चला तो उनकी पिटाई की ।

दूसरे अवसर पर उन्होंने बुद्ध-प्रवचन सुनने की इच्छा प्रकट की और विशाखा को बुद्ध के पास ले चलने के लिए आग्रह किया । लेकिन जाते समय अपने वस्त्रों में शराब की छोटी बोतलें छुपाकर ले गईं। वहाँ उन्होंने चुपके से उनका सेवन किया । उधर विशाखा ने बुद्ध से धर्म-प्रवचन का आग्रह किया । स्त्रियाँ मदहोश हो असभ्य ढंग से नाचने-गाने लगीं । मार को अच्छा अवसर मिल गया । उसने आग में घी डालने का काम किया । वे शीघ्र ही शर्म, हया छोड़, मर्यादा की लक्ष्मण रेखा लाँघने लगीं । बुद्ध ने महसूस किया कि मार को अपना कुकर्म करने का अवसर नहीं देना चाहिए । अतः सर्वत्र अंधेरा हो गया । अब स्त्रियाँ डरने लगीं और उनका चित्त शांत होने लगा। शास्ता ने हजारों सूरज के प्रकाश से धरती को प्रकाशित कर दिया और उन स्त्रियों को समझाते हुए कहा,"तुम्हें इस प्रमादित चित्त के साथ विहार में नहीं आना चाहिए था । तुम सतर्क नहीं थीं; अतः मार को अपना खेल दिखाने का अवसर मिल गया। तुमने अपने अन्दर विद्यमान रागाग्नि को प्रज्जवलित कर दिया और नंग-धड़ंग होकर नाचने-गाने लगीं । लेकिन यह आनंद कैसा, यह खुशी कैसी ? जब सारा संसार राग की ज्वाला से धधक रहा है तो उसे बुझाने का यत्न करना चाहिए, न कि उसमें और हवा देने का । तुम्हें उस रागाग्नि को बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए । अतः इस आग की ज्वाला से बाहर निकलो, क्योंकि जब सब कुछ ही जल रहा है तो फिर प्रमाद कैसा ? आनंद का कारण ही कहाँ है? चारों ओर जब अंधेरा है तो उस अंधेरे से निकलने के लिए दीपक ढूँढ़ने का प्रयास क्यों नहीं करते ? दीपक ढूँढ़ना ही एक मात्र कार्य होना चाहिए।"

टिप्पणीः कुत्ता हड्डी को काटता है, उस प्रक्रिया में अपनी जीभ काट लेता है; खून का नमकीन स्वाद अच्छा लगता है और उसे लगता है कि हड्डी से उसे आनंद मिल रहा है । दाद-दिनाय होने पर खुजलाना अच्छा लगता है पर वही खुजलाना उस जगह पर खून निकाल देता है । शराबी का मन शराब से नहीं भरता और न समुद्र-जल से प्यास बुझती है । उसी तरह संसार में अच्छी लगने वाली चीजें वस्तुतः आनंददायक नहीं होतीं । वे अंततः पीड़ा का ही कारण बनती हैं । रागाग्नि में हम क्या उसी तरह नहीं झुलस रहे, जैसे पतंगा अग्नि में गिरकर प्राण गँवा बैठता है ?

गाथा: पस्स चित्त कतं बिम्बं, अरूकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि ध्रुवं ठिति ।। 147 ।।

अर्थ: इस व्रणों से युक्त फूले हुए, रोगों से पीड़ित चित्रित शरीर को देखो जो संकल्प - विकल्पों से भरा हुआ है जो कभी भी स्थायी (अविनाशी) नहीं है ।

शरीर के रहस्य को देखो
सिरिमा की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में सिरिमा नाम की एक अति सुंदर गणिका रहती थी । वह मुक्तहस्त से भिक्षा - दान किया करती थी । एक बार भिक्षुगण उसकी सुन्दरता एवं उससे प्राप्त होने वाले स्वादिष्ट भोजन की चर्चा कर रहे थे कि एक तरूण भिक्षु , उसे देखे बिना ही, उस पर आसक्त हो गया । दूसरे ही दिन वह अन्य भिक्षुओं के साथ सिरिमा के घर भिक्षाटन हेतु गया । उस दिन वह बीमार थी, फिर भी भिक्षा देने घर से बाहर आई । भिक्षु उसकी सुंदरता देखकर मोहित हो गया ।

संयोगवश उसी रात सिरिमा की मृत्यु हो गई । राजा बिंबिसार ने इसकी सूचना बुद्ध को दी । शास्ता ने राजा को सलाह दी कि तीन दिनों तक उसके शरीर का दाह-संस्कार नहीं किया जाए पर शव की पशु-पक्षियों से रक्षा की जाए । चौथे दिन शास्ता की सलाह पर नगरवासियों एवं भिक्षुओं को सिरिमा को देखने के लिए श्मशान चलने का निर्देश दिया गया । वह आसक्त तरूण भिक्षु भी श्मशान गया ।

सिरिमा को मरे चार दिन हो गए । शरीर की सुन्दरता जाती रही । शरीर बैलून की तरह फूल गया है तथा नवों द्वारों से द्रव्य बह रहा है । विकृत शरीर से दुर्गन्ध फैल रही है, जिससे वहाँ खड़ा रहना मुश्किल हो रहा है ।

बुद्ध के निर्देशानुसार राजा बिंबिसार ने डौंड़ी पिटवायी कि यह राजगृह की सबसे सुन्दर गणिका सिरिमा है । जो चाहे इसे एक हजार कार्षापण देकर ले जाए । इस घोषणा पर कोई हिलता-डुलता नहीं है । फिर इस राशि को घटाकर पाँच सौ, ढ़ाई सौ, दो सौ और अंत में एक कौड़ी की जाती है । फिर भी सिरिमा का कोई ग्राहक खड़ा नहीं होता है । मुफ्त ले जाने के प्रस्ताव पर भी कोई टस से मस नहीं होता ।

उपयुक्त वातावरण बन जाने के बाद बुद्ध ने सबों को समझाया, "शरीर का धर्म देखो, जबतक सिरिमा का शरीर चलायमान था, अनेक एक दिन के लिए हजार कार्षापण देने के लिए सहर्ष तैयार रहते थे पर आज मुफ्त दिए जाने पर भी कोई व्यक्ति उस शरीर के पास जाने के लिए भी तैयार नहीं है । ऐसा है यह क्षणभंगुर, नाशवान शरीर । ऐसे शरीर में कैसी आसक्ति, ऐसे शरीर से कैसा लगाव ? और यह भी अंदर में गंदगी और व्याधियों से भरा पड़ा है: सिर्फ बाहर से एक सुन्दर आवरण से ढँका हुआ है ।"

गाथा: परिजिण्णमिदं रूपं, रोगनिड्डं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पूतिसन्देहो, मरणतं हि जीवितं ।।148।।

अर्थ: तुम्हारा यह शरीर जीर्ण है , रोगों का घर है तथा क्षणभंगुर है, दुर्गन्ध का समूह है तथा टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट होने वाला है । इसकी सत्यता मृत्यु तक ही है।

शरीरः रोग-नीड़
उत्तरा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

बौद्ध साहित्य के अनुसार उत्तरा थेरी एक सौ बीस वर्ष की उम्र में भी भिक्षाटन करती रही तथा विनय के नियमों का पालन करती रही ।

एक दिन वह भिक्षाटन से वापस आ रही थी, शास्ता भी उस मार्ग पर चल रहे थे । भीड़ बहुत थी, अतः बुद्ध को रास्ता देने के लिए उसने पीछे कदम हटाए । बूढ़ी थी, कदम डगमगा गए, शरीर को संभाल - नहीं सकी । अपने चीवर में उलझकर पीछे गिर गई ।

बुद्ध ने उत्तरा को गिरते हुए देख लिया और उसके पास आकर उसे सांत्वना दी । उसे बताया कि अब उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका है, अब इसके बिखरने का समय आ गया है । अब इसका शीघ्र ही नाश हो जाएगा । यह शरीर रोगों का घर है और क्षणभंगुर भी है। शीघ्र ही इसका नाश हो जाएगा । सभी रोगों का नि-वास होने के कारण ही यह रोग-नीड़ कहलाता है। भीतर से यह पूर्णतः दुर्गन्ध भरा है और मृत्यु के समय शरीर खण्ड-खण्ड हो जाता है । जिसने शरीर धारण किया है वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होगा ।

टिप्पणी : नश्वरता ही जीवन का सत्य है । जैसे हर यात्रा कभी न कभी समाप्त होगी, हर वाक्य में कहीं न कहीं पूर्ण विराम अवश्य आएगा, वैसे ही हर जीवन की पूर्णता मृत्यु के रूप में अवश्य ही होगी । अतः जीवन की - नश्वरता देख लेने से सत्य के यथार्थ दर्शन हो जाते हैं। पर सामान्यतः हम नश्वरता को बुद्धि के स्तर पर देखते हैं और इससे हमें सत्य प्राप्त नहीं होता । इसी कारण जीवन में द्वंद्व होता रहता है । जितनी शीघ्रता से "नश्वरता का सत्य" हमारे अस्तित्व का अंश हो जाएगा, उतनी ही शीघ्रता से हमें सत्यावलोकन हो सकेगा ।
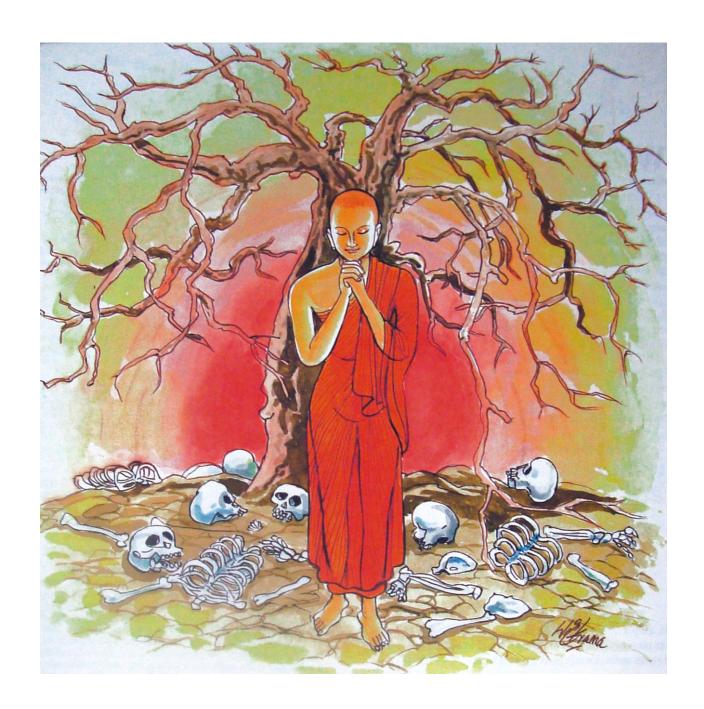
गाथा: यानिमानि अपत्थानि, अलाबूनेव सारदे।
कापोतकानि अट्ठीनि, तानि दिस्वान का रति ।।149।।

अर्थ: शरद ऋतु में पैदा हुई लौकी की तरह, कबूतर की सी सफेद हो गई इन हड्डियों वाले शरीर में, तुम्हारा यह अनुराग कैसा, यह आसक्ति कैसी ?

राग अंत तक साथ नहीं छोड़ेगा
अभिमानी भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

एक बार कुछ भिक्षुओं ने वन में जाकर साधना की और उन्हें गर्व हो गया कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है । उन्होंने अपनी उपलब्धि शास्ता को बताने हेतु बुद्ध विहार की ओर प्रस्थान किया पर बौद्ध विहार में प्रवेश से पूर्व ही भन्ते आनंद ने उन्हें बुद्ध का आदेश सुना दिया कि वे पहले श्मशान जायें और वहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देखकर और फिर चिंतन-मनन करके शास्ता से मिलने आयें ।

वे सभी श्मशान चले गए । वहाँ उन्होंने वीभत्स दृश्य देखा, एक-दो दिन से मृत पड़े शरीरों को देखा जिनसे पीब निकल रहा था और दुर्गन्ध आ रही थी। उन्हें घृणा होने लगी । उन पुराने शवों को देख कर उन्हें अनुभूति हुई कि ये मात्र कंकाल थे, अस्थि-पंजर थे । पर उन्होंने कुछ शवों को ऐसा भी देखा जो पुराने नहीं हुए थे । उनमें पूर्ण विकृति नहीं थी । इन मृत शरीरों को अच्छा समझ कर वे उनमें राग पैदा कर बैठे । पर उन्हें यह अनुभव हो गया कि उनका मन रागमय हो गया है । उधर तथागत ने देख लिया कि यह अनुचित था।

अत: गंधकुटी से दिव्य प्रकाश भेजकर बुद्ध ने उन शिष्यों को समझाया- "यह शरीर अस्थिसमूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन अस्थि समूहों को देखकर क्या तुम्हें रागमय होना उचित है ? यह शरीर तो शरदकाल में वायु तथा धूप से कुम्हलायी हुई, जहाँ-तहाँ बिखरी लौकी की तरह है । कबूतर के रंग वाले ऐसे हड्डियों को देखकर तुम्हारे चित्त में यह रति कैसी है ? निश्चय ही ऐसे नश्वर शरीर में अल्प मात्र भी राग पैदा करना अनुचित है ।
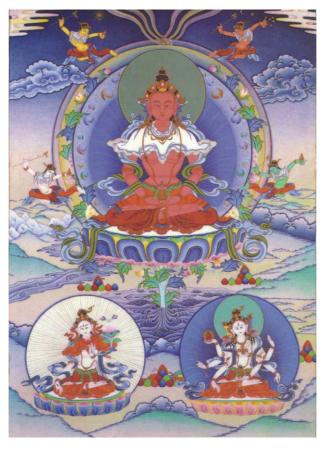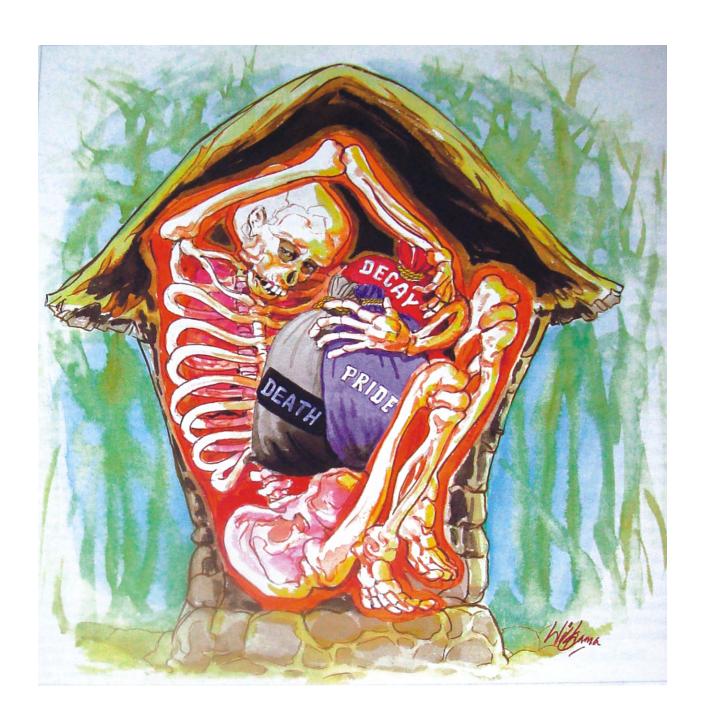
गाथा: अट्ठीनं नगरं कतं, मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च, मानो मक्खो च ओहितो।।150।।

अर्थ: यह शरीर अस्थियों से बना हुआ नगर है जिसे बाहर से माँस तथा रक्त द्वारा लीप दिया गया है। इस नगर में वृद्धावस्था, मृत्यु, अभिमान और ईर्ष्या आदि दुर्गुण वास करते हैं।

अस्थियों के नगर में मक्खियाँ भी हैं
रूपनंदा जनपदकल्याणी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

रूपनंदा शास्ता की छोटी बहन थी। एक दिन उसने सोचा कि उसके अग्रज श्रेष्ठबुद्ध बन गए, उनका पुत्र राहुल, उसकी माता गौतमी तथा पति नंद भी प्रव्रजित हो गए; फिर मैं भी क्यों न प्रव्रजित हो जाऊँ? अतः वह भी प्रव्रजित हो गई पर बुद्ध के त्रिरत्न में उसकी कोई श्रद्धा नहीं थी।

उसने सुन रखा था कि तथागत सदैव रूप को अनित्य कहा करते हैं। अतः काफी समय तक वह कभी धर्मसभा में नहीं गई पर एक दिन वह बहुत साहस जुटा कर धर्मोपदेश सुनने गई। उसने अपने आपको शास्ता की दृष्टि से छिपाकर रखा। इधर बुद्ध ने अपनी अंतर्दृष्टि से देख कर सोचा कि रूपनन्दा को किस प्रकार शिक्षा दी जाए। काँटा निकालने के लिए काँटे का ही व्यवहार किया जाता है- यह सोचकर उन्होंने एक अति सुंदर षोडसी लड़की को अपने पीछे प्रकट किया जो उनको पंखा झल रही थी। उस तरूणी को या तो रूपनन्दा देख सकती थी या बुद्ध। उसकी अपूर्व सुन्दरता को देख रूपनंदा को लगा कि उसके सामने वह वैसी ही थी जैसे एक राजहंसिनी के सम्मुख एक मादा कौआ खड़ी हो। उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर वह उसमें अनुरक्त हो गई।

बुद्ध ने उसकी आसक्ति देख उस तरूणी का रूप बदलना प्रारंभ कर दिया। पहले उसका षोडशी रूप बदलकर उसको बीस वर्ष की युवती के रूप में दिखाया। बाद में उसका सौन्दर्य क्रमशः कम करते हुए उसे प्रौढ़ और एक बुढ़िया के रूप में दिखा दिया। बूढ़ी औरत के रूप में वह एक लाठी के सहारे बहुत कठिनाई से अपने काँपते हुए शरीर को संभाल रही थी। बाद में वह रोगग्रस्त होकर गिर गई, अपने ही मलमूत्र में लोटती रही और दर्द से पीड़ित रही। अंततः मृत्यु को प्राप्त हुई। शरीर पूरी तरह फूल गया, बदबू आने लगी और शरीर के नौ छिद्रों से दुर्गन्धयुक्त द्रव्य बाहर आने लगे; आँख, कान, मुँह सभी से कीड़े बाहर आने लगे। कौआ, चील उस शरीर को खाने के लिए टूट पड़े।

इन दृश्यों को देख रूपनन्दा की उस युवती में आसक्ति खंडित हो गई और उसमें पूर्ण वैराग्य जाग उठा। उसकी मनःस्थिति देखकर, तथागत ने समय को अनुकूल पाकर, रूपनन्दा को समझाया कि अपने रूप पर किस बात का अभिमान ? इस तरूणी की जो गति हुई है, वह तुम्हारी भी होगी और सबों की भी होगी।

यह शरीर रोगों का घर है। अन्दर में गन्दा, अपवित्र, दुर्गन्धमय नाला बह रहा है। पाखाना-पेशाब, थूक-खखार, नाक-आँख-कान की गंदगी, पीब आदि अनेक गंदगियों को ढँककर, ऊपर से उसे सुन्दर बना दिया गया है। ऐसा अपवित्र शरीर शाश्वत भी नहीं है, वह अनित्य है। गन्दगी से भरा हुआ घड़ा, जिसे बाहर से बहुत सुंदर ढ़ंग से रंग दिया गया हो, एक दिन टूट जाएगा। ऐसे शरीर से कोई मूर्ख व्यक्ति ही आसक्ति करेगा। ऐसे शरीर की प्रशंसा तो कोई महामूर्ख ही करेगा। सत्य का जो अन्वेषी इस सत्य को पहचान लेगा, वह इस शरीर के धोखे से बाहर आ जाएगा। जो इस शरीर के धोखे से बाहर आ जाएगा, वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाएगा।

बुद्ध ने यह भी समझाया कि यह शरीर तीन सौ अस्थियों का घर मात्र है। जैसे शाक-सब्जी के वृक्ष को खड़ा रखने के लिए उसे लकड़ी से बाँध दिया जाता है, जैसे खर को बल्लियों एवं रस्सी से बाँधकर उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर, झोपड़ी का निर्माण किया जाता है, वैसे ही तीन सौ हड्डियों को एकत्र कर उन्हें पेशियों से बाँध दिया जाता है, और उसके अन्दर रक्त की नलिका बनाकर माँस द्वारा स्थायी रूप देकर, चर्म द्वारा ढँक दिया जाता है। इस शरीर के अंदर बुढ़ापा, बीमारी व मृत्यु के साथ-साथ अभिमान आदि को छुपाकर रख दिया जाता है जो समय-समय पर अपना असर दिखाते हैं। ऐसे शरीर से अगर कुछ प्राप्त हो सकता है तो वह है शारीरिक तथा मानसिक कष्ट; उससे आनंद कहाँ ?

गाथा: जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति।। 151।।

अर्थ: राजाओं के सुन्दर-सुन्दर, चित्र-विचित्र रथ समय के अ-न्तराल से जीर्ण हो जाते हैं। उसी प्रकार मानव शरीर भी जीर्ण हो ही जाता है। हाँ-सज्जनों द्वारा अनुमोदित धर्म कभी जीर्ण नहीं होगा-सज्जनों की ऐसी युक्ति है।

बुद्ध उपदेश : सनातन सत्य
मल्लिकादेवी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन राजा प्रसेनजित की पत्नी मल्लिका देवी अपने घर के स्नान गृह में प्रविष्ट हुई। उसके साथ ही उसका पालतू कुत्ता भी स्नान गृह में प्रविष्ट हो गया। हाथ-मुँह धोकर जाँघों को धोने के लिए जब वह झुकी तब उसका कुत्ता उसके साथ मैथुन करने लगा। रानी ने उस स्पर्श सुख को जारी रहने दिया। राजा ने अपने झरोखे से रानी को उस स्थिति में देख लिया और जब वह वापस आई तो पूछा कि वह कुत्ते के साथ मैथुन क्यों कर रही थी ? रानी ने इसे नकार दिया और साथ ही राजा को समझा दिया कि वह स्नानागार अजीब प्रकार का है। बाहर से देखने वाले को उसमें प्रविष्ट हुआ व्यक्ति दो व्यक्तियों के रूप में दिखता है। विश्वास दिलाने के लिए राजा को स्नानागार में जाने के लिए कहा। राजा के स्नानागार में प्रविष्ट होते ही रानी ने झरोखे से चिल्लाकर कहा कि उस बकरी के साथ क्यों संबंध बनाए हुए हो ? इस प्रकार बाल स्वभाव के राजा ने रानी की बात मानकर उस घटना को भुला दिया पर रानी को उसकी गलती कचोटती रही। उसने महसूस किया कि यद्यपि राजा ने उसकी बात मान ली थी फिर भी निषिद्ध कर्म करके उसने पाप किया था। अब उसका मन दान-पुण्य में - नहीं लगता था। वह दुखी मन के साथ मर गई और नरक में चली गई।

उधर राजा यह जानने को बहुत उत्सुक था कि रानी का पुनर्जन्म कहाँ हुआ। शास्ता ने उसकी मति ऐसी रखी कि वह आठवें दिन ही यह प्रश्न पूछ पाया। सात दिनों बाद रानी का जन्म तुषित भवन में हो गया था।

आठवें दिन बुद्ध राजा के यहाँ भिक्षाटन के लिए पधारे। शास्ता ने, बाहर में, जहाँ चित्रित रथ खड़े थे, बैठने का संकेत दिया। राजा ने शास्ता को वहीं भोजन दान दिया। उसके ही पूछने पर तथागत ने बताया कि रानी का पुनर्जन्म तुषित भवन में हुआ था। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ पर उसने बुद्ध को बताया कि रानी की मृत्यु के बाद उसका शरीर उसका साथ नहीं दे रहा था। उसे अकेलापन लग रहा था।

तब बुद्ध ने राजा को समझाया कि इस शरीर का आना-जाना तो लगा ही रहता है,। अतः इसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। शास्ता ने राजा से यह भी प्रश्न पूछा कि यह रथ किसका है। राजा ने उत्तर दिया, "यह पितामह का है और उसके बगल का रथ मेरे पिताजी का।" "और यह रथ ?", शास्ता ने पूछा। "यह रथ मेरा है।" तब बुद्ध ने राजा को समझाते हुए कहा, "तुम्हारे पितामह का रथ, आकार में समान होने पर भी तुम्हारे पिताजी के रथ के सामने फीका लगता है, जैसे तुम्हारे पिता का रथ तुम्हारे रथ के सामने फीका लगता है। जब निर्जीव काष्ठ में भी जीर्णता आ जाती है तब इस शरीर में जीर्णता कैसे नहीं आएगी ? केवल धर्म और प्रवचन जैसे सद्गुण की कभी हानि नहीं होती अर्थात् वह कभी समाप्त नहीं होता।"

गाथा: अप्पस्सुतायं पुरिसो, बलिवद्दो व जीरति ।
मंसानि तस्स बड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति ।।152।।

अर्थ: अल्प ज्ञान वाला पुरूष बैल के समान बढ़ता है। उसके शरीर का माँस तो बढ़ जाता है, पर उसकी बुद्धि नहीं बढ़ती। उसी प्रकार अल्पश्रुत व्यक्ति विशालकाय होने पर भी किसी का कोई भला नहीं कर पाता।

मन बनाम शरीर
काल उदयि स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

काल उदयि स्थविर को इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि कहाँ क्या कहना चाहिए। जब गृहस्थ आनन्दोत्सव मनाते रहते थे तो वह वहाँ श्मशान के उपयुक्त गाथाएं गाता। इसी प्रकार अगर किसी परिवार के लोग किसी की मृत्यु के कारण शोक मना रहे होते थे तो वह वहाँ खुशी के दोहे सुनाता। इस प्रकार वह जहाँ कहीं जाता, कहना कुछ चाहता था और कह कुछ और ही देता था। अन्य भिक्षुओं ने काल उदयि के इस व्यवहार को देखकर बुद्ध से कहा कि काल उदयि को आनन्दोत्सव एवं शोक में भेजने से क्या लाभ क्योंकि वह तो सदैव उल्टी-सीधी बातें ही किया करता है। तब शास्ता ने बताया कि काल उदयि इस जन्म में ही नहीं, पूर्व जन्म में भी इस प्रकार का व्यवहार करता था। उन्होंने निम्न कथा सुनाई।

प्राचीन काल में वाराणसी में अग्निदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसका पुत्र सोमदत्त राजा का बहुत करीबी था। एक दिन उसके दो बैलों में से एक बैल मर गया। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा कि तुम राजा के पास जाकर एक बैल के लिए याचना करो। पुत्र को लगा कि अगर वह राजा से आग्रह करेगा तो राजा को लगेगा कि वह अपने सम्बन्ध का दुरूपयोग कर रहा है। अतः पुत्र ने पिता से आग्रह किया कि वही राजा के पास जाकर बैल की याचना करे।

पिता के तैयार हो जाने पर सोमदत्त ने पिता को निम्न वाक्य कहने के लिए याद कराया, "आदरणीय महाराज ! मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं खेती किया करता था। उनमें से एक मर गया। श्रीमान् ! उसकी जगह कृपया एक दे दीजिए, " परन्तु जब वह राजा के सम्मुख प्रकट हुआ तो कुछ यूँ कहा, "आदरणीय महाराज ! मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं खेती किया करता था। उनमें से एक मर गया। श्रीमान् ! उसकी जगह कृपया एक ले लीजिए। " उस जन्म में निम्न बुद्धि वाला वह ब्राह्मण काल उदयि ही था।

काल उदयि जैसा व्यक्ति एक साँड़ की तरह है। साँड़ किसी काम का नहीं होता है । अतः उसे जंगल में अकेला छोड़ दिया जाता है। वह खूब खाता है और शरीर से मांसल हो जाता है पर उसकी बुद्धि ज्यों-की -त्यों बनी रहती है। वह समाज के ऊपर बोझ ही होता है।

गाथा: अनेकजातिसंसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं ।।153।।

अर्थ: इस शरीर रूपी भवन के निर्माणकर्त्ता की खोज में विभिन्न जन्मों में इस संसार में बिना रुके आते-जाते दौड़ता रहा। इस संसार में बार-बार जन्म लेना वस्तुत: दुखदायी है।

सृष्टि की महानतम खोज
आनन्द को उपदेश

स्थान : बोधिवृक्षमूल, बोधगया

यह गाथा बुद्ध ने बोधगया में पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति के बाद उच्चरित की थी । बाद में आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में भी इसकी पुनरावृत्ति की थी।

उरविला के जंगलों में, निरंजना नदी के तट पर सिद्धार्थ ने 2553 वर्षों पूर्व वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन दृढ़ संकल्प लिया कि आज सत्य के दर्शन करके ही ध्यान से उठूँगा। सूर्यास्त से पूर्व ही वे उस पवित्र पीपल के वृक्ष, जिसे आज बोधि वृक्ष कहा जाता है, के नीचे आकर ध्यानस्थ हो गए। इधर मार ने यह सोचकर कि यह"करो या मरो" का दिन है, अपनी पूरी शक्ति लगा दी। तरह-तरह के प्रलोभन दिए। एक से एक सुन्दरियों का समूह भेजा। राक्षस-दैत्यों, नाग-पशुओं का झुंड भेजा पर कोई उन्हें टस से मस नहीं कर पाया। उसकी पुत्रियाँ आरति, तन्हा आदि के असफल रहने पर, उनमें से एक ने यशोधरा का रूप धरा और "यशोधरा" बुद्ध के सामने आकर उनसे प्रार्थना करने लगी कि वे व्यर्थ की खोज कर रहे हैं। पर बुद्ध बिल्कुल भी न डिगे। साक्षी पीपल का वृक्ष भी अडिग रहा। सूर्यास्त होने से पूर्व ही मार की सेना हारकर भाग गई। रात्रि के प्रथम भाग में उन्होंने अपने पूर्व जन्मों का एक-एक कर अवलोकन किया। मध्य भाग में पूरी सृष्टि पर दृष्टि फेरी कि यह अस्तित्व कहाँ से प्रारंभ होकर कहाँ समाप्त होता है। अन्तिम प्रहर में समस्त सृष्टि के प्रति दया और करूणा की लहरों से ओतप्रोत होकर प्रेममय भाव भेजा और सूर्योदय के समय उन्होंने सम्पूर्ण सत्य का अवलोकन किया। उसके बाद उनके मुखारविंद से ये गाथाएं स्वतः ही निकल पड़ीं जो युग-युगान्तरों के लिए अमर हो गईं।

टिप्पणी : बुद्ध की गाथा का आशय है : जिन-जिन सामग्रियों से तुम यह कारागार बनाते हो वे सारी सामग्रियाँ नष्ट कर दी गई हैं। जिन-जिन यंत्रों से तुम इस कारागार का निर्माण करते हो वे सभी तोड़ दी गई हैं। सारी संरचना को ध्वस्त कर दिया गया है। मेरा मन अब पूर्णतः शान्त हो गया है । जो तृष्णा थी वह पूर्णतः समाप्त हो गई है।

मेरी यात्रा का सिलसिला, आवागमन का चक्र अनन्य जन्मों के रूप में चल रहा था। मैं उन जन्मों के रचयिता की खोज कर रहा था पर सदैव असफल रहा था। इस शरीर रूपी कारागार के निर्माणकर्ता ! आज मैंने तुम्हें पकड़ लिया है। आवागमन का यह चक्र बहुत ही दुखदायी था। तुम्हें अंततः खोज ही लिया। तुम्हारी हर जन्म में मेरे लिए चुपचाप कारागार बनाने की आदत पकड़ी गई। अब तुम मेरे लिए "स्व" का कारागार फिर कभी नहीं बना सकोगे।

गाथा: गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खितं ।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा ।।154।।

अर्थ: हे गृहकारक ! (तृष्णा !) मैंने अंततः तुम्हें देख ही लिया है। अब तुम पुनः कारागार नहीं बना सकोगे। सभी कड़ियाँ टूट गई हैं। शिखर भी ध्वस्त हो गया है। मेरा चित्त संस्काररहित हो चुका है। तृष्णा क्षय (अर्हत्व) प्राप्त हो चुका है।

निर्माण सामग्री नष्ट कर दी गई
आनन्द को उपदेश

जिस प्रकार कारागार के निर्माण के लिए मजदूरों, मिस्त्रियों एवं कारीगरों की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इस शरीर रूपी कारागार के निर्माण के लिए सांसारिक इच्छा की आवश्यकता पड़ती है : राग, द्वेष एवं तृष्णा की जरूरत पड़ती है। बुद्ध के पूर्व जन्मों में ये किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते थे पर आज बोधि वृक्ष के नीचे उन्होंने इन्हें पहचान लिया जो अपने छल-बल द्वारा, माया का सहारा लेकर सदा से उन्हें गुमराह किए हुए थे। ज्ञान की अग्नि में आज उन्होंने इन सबों को भस्म कर दिया।

भवन के निर्माण के लिए एक मजबूत शहतीर की आवश्यकता होती है जो छत का वजन संभालती है। बुद्ध ने उस शहतीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अब वह शहतीर छत का वजन कैसे उठा पायेगी ? गृह निर्माण सामग्री छरी, सीमेंट, चूना सभी को इधर-उधर मिट्टी-पानी में मिला बरबाद कर दिया, अर्थात् उन इन्द्रियों की सामग्री को बरबाद कर दिया जिनसे इस शरीर रूपी कारागार का निर्माण होता था।

टिप्पणी: गाथा 153-154 एक जन्म जन्मान्तर के थके पथिक की यात्रा समाप्ति पर प्रसन्नता का द्योतक है।

वस्तुतः बुद्ध इन दोनों गाथाओं के माध्यम से मार को एवं कर्म के सृजनकर्ता को चुनौती देते हैं कि किस प्रकार उन्हें पूर्व जन्मों में इन्द्रियों की मदद से छल द्वारा, तृष्णा का मद्यपान करा-कराकर, राग-रंग, रूप-अरूप का दृश्य दिखाकर गुमराह कर दिया जाता था जिससे उन्हें हर बार धोखा हो जाता था। उन्हें हर जन्म में पकड़कर एक बार पुनः शरीर रूपी कारागार में डाल दिया जाता था। अब वे मार को चुनौती देते हैं कि तुममें अगर हिम्मत है तो एक बार फिर मेरे लिए नूतन कारागार बनाकर दिखाओ।

बुद्ध की ये दोनों गाथाएं मानव जाति के लिए आशा की किरण के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। इनसे सामान्य जन को भी यह ढाढ़स बँधता है कि उसके लिए भी एक भविष्य है। वह समझ पाता है कि यद्यपि वह बेड़ियों में जकड़ा हुआ है पर उन बेड़ियों को तोड़कर उनसे निकल सकता है। बुद्ध अगर उस जंजाल से निकल सकते हैं तो प्रयत्न करने से वह भी उस जाल से मुक्त हो सकता है ।

गाथा: अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलब्धा योब्बने धनं ।
जिण्णक्रोंचा व झायन्ति, खीणमच्छे व पल्लले ।।155।।

अर्थ: जो लोग जीवन के प्रथम काल में धर्माभ्यास नहीं करते तथा युवास्था में धन का अपव्यय करते हैं वे समय के अन्तराल पर उसी प्रकार चिंतातुर, दुःखी रहते हैं जैसे एक टूटे पंख वाला बूढ़ा क्रौंच पक्षी मतस्यविहीन तालाब के किनारे बैठा-बैठा दुःखी रहता है। (अफसोस करने के अतिरिक्त वह अन्य कुछ कर ही नहीं पाता)

अब पछताये होत क्या ?
महाधनी श्रेष्ठी की कथा

स्थान : ऋषिपत्तन, सारनाथ

वाराणसी में अस्सी करोड़ मुद्रा वाले एक धनी श्रेष्ठी के घर में एक पुत्र का जन्म हुआ। माता-पिता ने सोचा कि धन का बाहुल्य है। अतः पुत्र को मात्र नृत्य-संगीत कलायें सिखाईं। उसी नगर में अस्सी करोड़ मुद्रा वाला एक अन्य परिवार भी था जिसकी एक पुत्री थी। उनकी भी सोच वैसी ही थी तथा उन्होंने भी अपनी पुत्री को मात्र नृत्य-संगीत में दीक्षित किया। बाद में दोनों का विवाह हो गया। कुछ समय बाद दोनों के माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। वह श्रेष्ठीपुत्र प्रतिदिन तीन बार राज दरबार जाता था।

नगर के कुछ धूर्तों ने, उसके पैसे का लालच कर, थोड़ी-थोड़ी शराब पिलाकर, उसे नशे की आदत ऐसी लगा दी कि कुछ समय में ही उसका और उसकी पत्नी का सारा धन बरबाद हो गया। तत्पश्चात् शराब ने उसके घर की सारी सामग्री बिकवा दी। अब वह बेघर, निर्धन होकर भीख माँगकर अपनी पत्नी के साथ सड़कों पर रहता था।

एक दिन वह विहार के सम्मुख उच्छिष्ट भोजन ग्रहण कर रहा था। तभी बुद्ध और आनन्द उधर से गुजरे। श्रेष्ठी पुत्र को देखकर तथागत मुस्कुरा दिए। आनन्द ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने इस महान धनीश्रेष्ठी के विषय में बताया। उन्होंने कहा कि अगर युवावस्था में ही इस युवक ने अपने धन का सदुपयोग किया होता तो आज वह नगर का सबसे धनी व्यक्ति होता। इसके विपरीत यदि उसने अध्यात्म का मार्ग चुना होता तो आज वह अर्हत्व प्राप्त कर चुका होता और उसकी पत्नी अनागामी होती। अगर उसने अपनी प्रौढ़ अवस्था में भी धन का उपयोग किया होता तो आज वह नगर का द्वितीय सबसे धनी सेठ होता। अगर प्रव्रज्या ग्रहण किया होता तो आज वह अनागामी होता और उसकी पत्नी सकृदागामी होती। इसी तरह पूरा जीवन बीतने पर भी जीवन के अपराह्न बेला अर्थात् तीसरे प्रहर में भी धन का सदुपयोग किया होता तो आज वह नगर का तीसरा सबसे धनी श्रेष्ठी होता, इसके विपरीत यदि वह अध्यात्म के पथ पर गया होता तो वह सकृदागामी होता और उसकी पत्नी स्रोतापन्न होती। पर जीवन के तीनों प्रहरों को उसने यूँ ही व्यर्थ गँवा दिया। रात्रि सोकर, दिवस खाकर, यह जो हीरा तुल्य जन्म था, उसे यूँ ही व्यर्थ गँवा दिया।
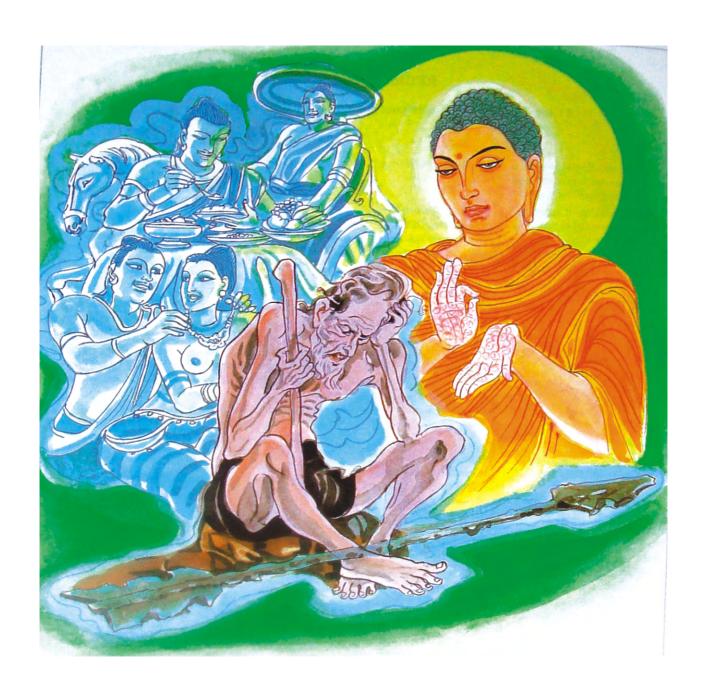
गाथा: अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलब्धा योब्बने धनं ।
सेन्ति चापातिखीणाव, पुराणानि अनुत्थुनं ।।156।।

अर्थ: इसी प्रकार जिन लोगों ने जीवन के प्रथम काल में धर्माभ्यास नहीं किया, युवास्था में धन नहीं कमाया। वे लोग धनुष से छूटे हुए वाण की तरह अपनी बीती बातों की प्रशंसा करते हुए चिन्तित होकर पड़े रहते हैं।

जब चिड़िया चुग गई खेत
महाधनी श्रेष्ठी की कथा

जलाशय का दृष्टान्त बहुत ही सुन्दर है। जल का अभाव धन का अभाव इंगित करता है। मछलियों की समाप्ति, धन-ऐश्वर्य की समाप्ति का द्योतक है। पंख टूट जाने के कारण जैसे बूढ़ा क्रौंच पक्षी उड़कर दूसरे जलाशय पर नहीं जा पाता है, वैसे ही वृद्धावस्था आने पर बूढ़ा आदमी अपने व्यर्थ गँवाए समय पर रोने के सिवाय और कुछ नहीं कर पाता।

बुद्ध ने दूसरा उदाहरण धनुष का दिया है। जैसे धनुष से वाण निकलकर कुछ दूर चलकर धरती पर गिर जाता है, अगर वहाँ से कोई उसे नहीं उठावे तो वहीं पड़ा रहता है तथा समय के अन्तराल से दीमक आदि खाकर उसे नष्ट कर देते हैं, वैसे ही मूर्ख जन अपनी आयु के तीनों भाग का अतिक्रमण कर अंत में आत्मोद्धार न कर, दु:खी मन से समय बिताते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अत: बुद्धिमानी इसी बात में है कि समय रहते ही चेता जाए।

टिप्पणी: मनुष्य को समझना चाहिए कि इस धरती पर उसके जीवन की अवधि सीमित है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ शरीर का क्षय होता है और बूढ़े क्रौंच पक्षी की तरह एक समय ऐसा भी आता है कि शरीर जवाब दे जाता है। वह कुछ भी करने में, हमें सहयोग देने में असमर्थ होता है क्योंकि मशीन की तरह इसने अपना काम पूरा कर दिया है, उसका जीवन काल समाप्त हो गया है। अगर उस देह धारक ने इन वर्षों में अपने शरीर का सदुपयोग नहीं किया तो इसमें शरीर का क्या दोष ?

DHAMMAPADA
JARA VAGGA

आप अपनी सुरक्षा
स्वयं करें
धम्मपद
आत्म वर्ग
गाथा और कथा
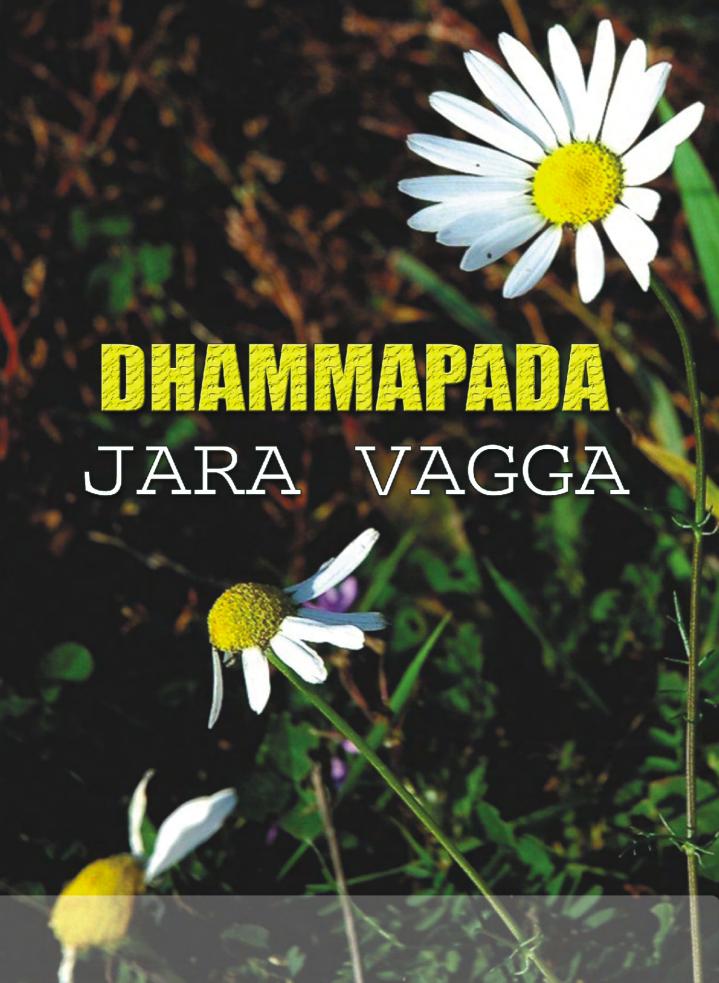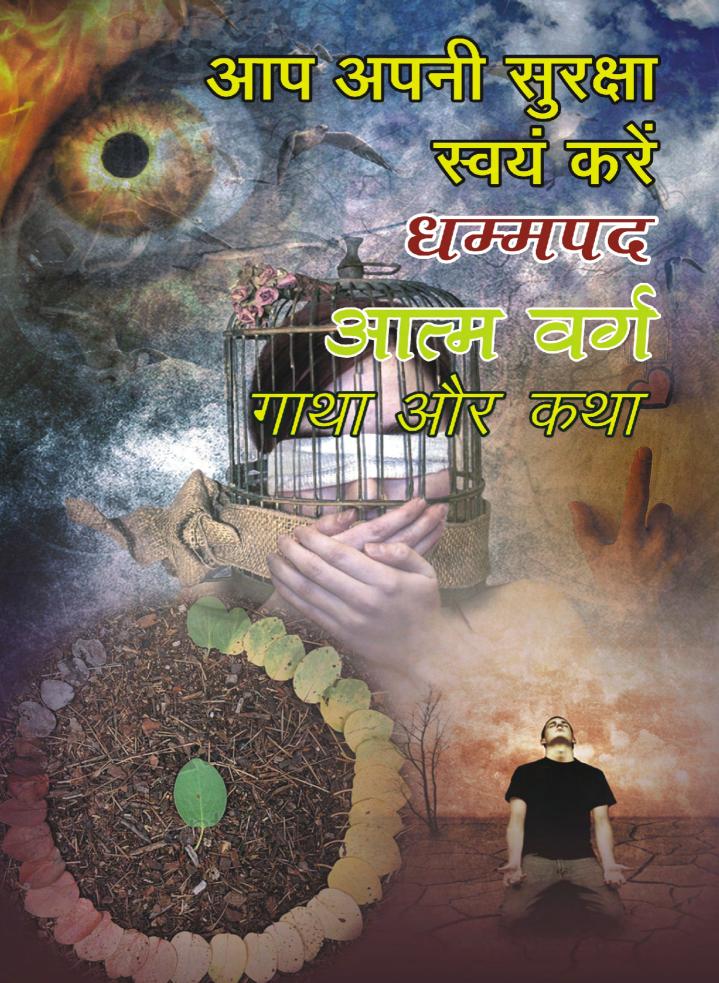
आप अपनी सुरक्षा स्वयं करें

धम्मपद

आत्म वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
ह्षीकेश शरण

विषय सूची

आत्म वर्ग

गाथा: अत्तानं चे पियं जञ्ञा, रक्खेय्य नं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं, पटिजग्गेय्य पण्डितो ।।157।।

अर्थ: अगर हम अपना भला चाहते हैं तो हमें अपनी रक्षा करनी चाहिए। पंडित को चाहिए कि वह तीनों प्रहर में कम से कम एक प्रहर अवश्य जागरूक रहे।

अपनी रक्षा स्वयं करें
बोधिराजकुमार की कथा

स्थान : भेसकलावन

किसी समय राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक अति भव्य महल का निर्माण किया। जब महल का निर्माण कार्य पूरा हो गया तब उसने बुद्ध को भोजन-दान हेतु आमंत्रित किया। इस विशेष आयोजन के लिए उसने उस महल को खूब सुन्दर ढंग से सजाया तथा चार प्रकार के सुगन्धों से सुगन्धित किया। उसने जमीन पर दरवाजे से लेकर अंदर तक एक लम्बी चादर बिछवा दी। राजकुमार को कोई संतान नहीं थी । अत: उसने संकल्प लिया कि अगर बुद्ध के चरण उस चादर पर पड़ गये, तो उसे संतान की प्राप्ति होगी। जब बुद्ध आ गए तब राजकुमार बोधिराज ने उन्हें तीन बार सम्मानपूर्वक अंदर प्रवेश करने का आग्रह किया। लेकिन बुद्ध ने, अंदर जाने की अपेक्षा, मात्र आनन्द की ओर देखा। आनंद बुद्ध का संदेश समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से बिछी हुई चादर हटा देने के लिए कहा। उसके बाद ही बुद्ध राजमहल में प्रविष्ट हुए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादपूर्ण भोजनदान दिया। भोजनोपरान्त राजकुमार ने उनसे पूछा कि उन्होंने उस चादर पर अपने चरण क्यों नहीं रखे। प्रत्युत्तर में बुद्ध ने राजकुमार से पूछा कि क्या उसने चादर इस मंशा से बिछाई थी कि अगर उस पर बुद्ध के चरण-स्पर्श होंगे तो उसे संतान की प्राप्ति होगी। राजकुमार ने स्वीकृतिपूर्ण उत्तर दिया। तब बुद्ध ने उसे बताया कि राजकुमार और उसकी पत्नी को पूर्व काल में किए गए बुरे कर्मों के कारण संतान की प्राप्ति नहीं होगी। इसके बाद बुद्ध ने उनके भूतकाल की कथा सुनाई :

अपने एक पूर्व जन्म में राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज दुर्घटना के मात्र बचे हुए यात्री थे। वे एक अनजान द्वीप पर छूट गए और वहाँ जीवित रहने के लिए चिड़ियों के अंडे खाते गए। जब अंडे खतम हो गए तब वे चिड़ियों को मारकर खाने लगे और इस प्रकार अपने को जीवित रखा। ऐसा करते समय उनके हृदय में जरा भी दु:ख नहीं था, जरा भी दया नहीं थी। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान की प्राप्ति नहीं होगी। अगर अपने कृत का उन्हें जीवन के किसी काल में जरा भी अफसोस होता तो इस जन्म में उन्हें एक या दो संतानों की प्राप्ति होती। तब राजकुमार को इंगित करते हुए बुद्ध ने समझाया, "जो अपने आप से प्रेम करता है उसे जीवन के प्रत्येक काल में अपनी रक्षा करनी चाहिए और नहीं तो कम से कम एक काल में तो अवश्य रक्षा करनी चाहिए।"

टिप्पणी : अगर हम समझते हैं कि हम अपना भला चाहते हैं तो फिर हमें अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। हमें अपने आप को जीवन के तीन कालों में से कम से कम एक काल में अवश्य सुरक्षित रखना होगा। वे काल हैं - बाल्यकाल, युवावस्था एवं बुढ़ापा।
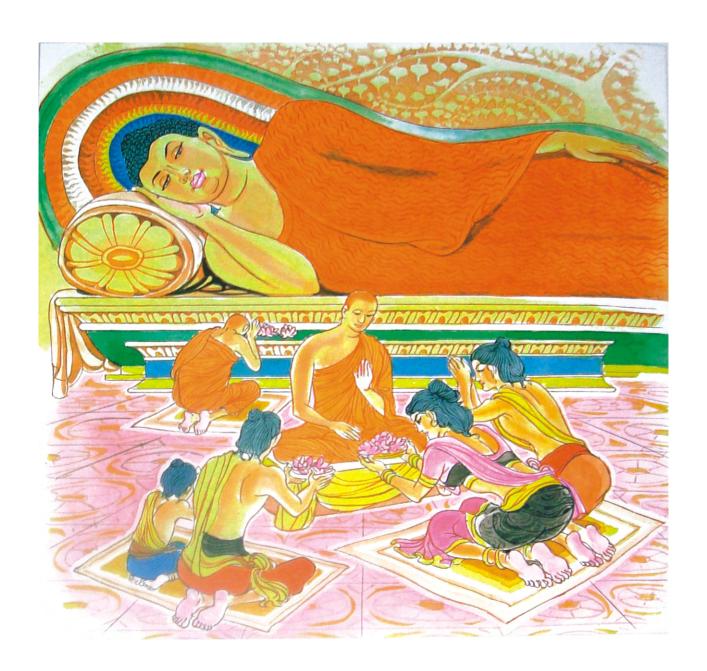
गाथा: अत्तानमेव पठमं, पतिरूपे निवेसये ।
अथञ्ञमनुसासेय्य, न किलिस्सेय्य पण्डितो ।।158।।

अर्थ: बुद्धिमान पुरूष को चाहिए कि पहले वह स्वयं को उचित कार्य में लगावे और तब दूसरों को उपदेश दे। ऐसा करने से वह व्यक्ति दुख को प्राप्त नहीं होता।

दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने आप को संभालें
स्थविर उपनन्द की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

उपनन्द, शाक्य वंश का एक भिक्षु था और बहुत ही निपुण वक्ता था। वह दूसरों को लालची न होने की शिक्षा दिया करता था और यह भी शिक्षा दिया करता था कि इंसान की आवश्यकताएं सीमित होनी चाहिए, उसे संतोष करना चाहिए। वह संतोष एवं मितव्ययिता के ऊपर व्याख्यान देकर सभी को प्रभावित कर दिया करता था लेकिन वह जो शिक्षा देता था उसे स्वयं अपने जीवन में नहीं उतारता था। दूसरे भिक्षुओं को जो चीवर आदि प्राप्त होते थे वह उन्हें भी ले लेता था।

एक बार उपनन्द गाँव के एक विहार में वर्षाकाल के ठीक पहले गया। कुछ युवक भिक्षुओं ने उसकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर उससे वर्षाकाल में उसी विहार में रूक जाने का आग्रह किया। उसने उनसे प्रश्न किया कि सामान्यतः वर्षाकाल के लिए दान के रूप में प्रत्येक भिक्षु को कितने चीवर मिलते हैं। उन्होंने बताया कि प्रत्येक भिक्षु को सामान्यतः एक चीवर मिलता है। इसलिए वह वहाँ नहीं रूका, लेकिन अपने जूते उस विहार में छोड़ गया। अगले विहार में उसे जानकारी मिली कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षावास में दान के रूप में दो चीवर प्राप्त होते हैं। अतः उसने वहाँ अपनी छड़ी छोड़ दी। अगले विहार में भिक्षुगण को वर्षावास के दान के रूप में तीन चीवर प्राप्त होते थे। अतः उसने वहाँ अपना जलपात्र छोड़ दिया। अंततः उसने उस विहार में, जहाँ भिक्षुगण को चार चीवर प्राप्त होते थे, अपना वर्षावास बिताया।

वर्षावास के उपरांत उसने अन्य विहारों से, जहाँ उसने अपनी निजी सामग्री छोड़ रखी थी, अपने हिस्से के चीवर की माँग कर उन्हें एक गाड़ी पर लादा और अपने पुराने विहार में आ गया। रास्ते में दो युवा भिक्षुओं से उसकी भेंट हुई जो दान में प्राप्त दो चीवरों एवं मखमल के एक कीमती कंबल का आपस में बँटवारा नहीं कर पा रहे थे। चूँकि बँटवारे पर उनमें आपस में सहमति नहीं बन पा रही थी, उन्होंने उपनन्द से बँटवारा कर देने का आग्रह किया।

उपनन्द ने दोनों को एक-एक चीवर दे दिया और कीमती कंबल अपने पारिश्रमिक के रूप में रख लिया।

दोनों ही भिक्षु उसके निर्णय से संतुष्ट नहीं हुए लेकिन वे इस बारे में कुछ नहीं कर सकते थे। असन्तुष्ट एवं निराश होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें पूरी जानकारी दी। बुद्ध ने उन्हें समझाया, "जो दूसरों को शिक्षा देता है उसे पहले स्वयं को शिक्षा देनी चाहिए और उस शिक्षा को पहले स्वयं अमल में लाना चाहिए।"
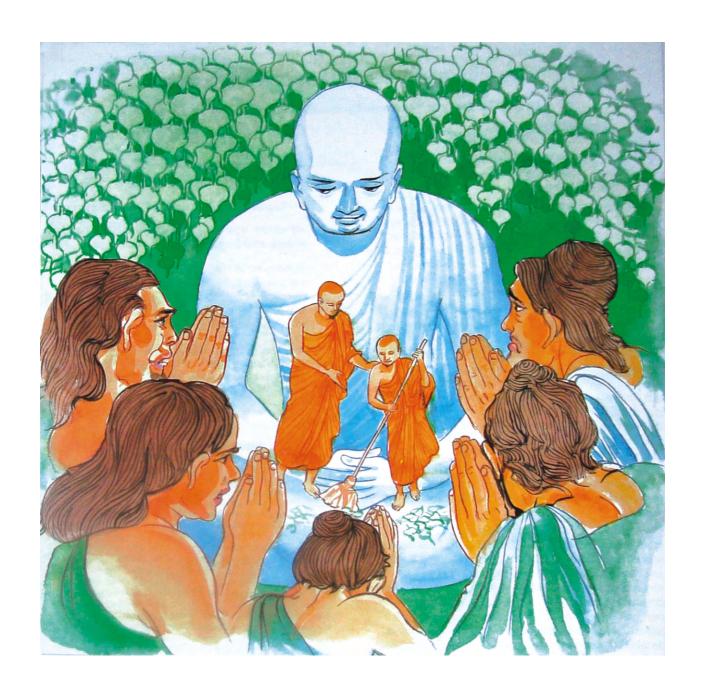
गाथा: अत्तानं चे तथा कयिरा, यथाञ्ञमनुशासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ, अत्ता हि किर दुद्दमो ।।159।।

अर्थ: अगर मनुष्य दूसरों को उपदेश देना चाहता है तो उसे पहले अपने आप को उसके अनुरूप बना लेना चाहिए। इस प्रकार स्वयं जब इन्द्रियों का दमन कर लेता है तब उसका उपदेश सफल होता है; स्वयं का दमन करना, अनुशासित करना ही सबसे बड़ी चुनौती है।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे
प्राधानिक स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

भिक्षु प्राधानिक, बुद्ध से ध्यान पद्धति सीखकर, अनेक भिक्षुओं के साथ वन के लिए कूच कर गया। वहाँ उसने भिक्षुओं को सतत् अप्रमत्त रहकर ध्यान साधना करने की सीख दी। दूसरों को ऐसी शिक्षा देकर वह स्वयं लेट जाता और फिर सो जाता। युवक भिक्षु उसकी आज्ञा का अनुपालन करते। वे रात्रि के प्रथम प्रहर में ध्यान-साधना करते और जब रात्रि-शयन को जाने को होते तो प्राधानिक जग जाता था और उन्हें अपने अभ्यास के लिए वापस जाने के लिए कहता। जब वे ध्यान-साधना के बाद द्वितीय या तृतीय प्रहर में वापस आते तो फिर वह उसी बात की पुनरावृत्ति करता।

चूँकि वह सदैव इसी ढंग से शिक्षा देता रहा, युवक भिक्षुगण को कभी भी मन की शांति प्राप्त नहीं हुई, इसलिए ध्यान-साधना पर वे ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाए और न गाथाओं को ही हृदयंगम कर पाए। जब उन्होंने पता लगा लिया कि उनका गुरू प्राधानिक केवल दूसरों को शिक्षा देता है पर अधिकांश समय वह स्वयं सोया करता है तो उन्होंने टिप्पणी की, "हम तो बरबाद हो गए, हमारा शिक्षक केवल हमें डाँटना जानता है, लेकिन वह स्वयं कुछ नहीं करते हुए अपना समय बरबाद कर रहा है।"

इस समय तक चूँकि भिक्षुओं को पर्याप्त विश्राम नहीं मिल रहा था, वे थक गए थे और बेचैन रहने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी भिक्षु अपनी ध्यान-साधना में जरा भी विकास नहीं कर पाया।

वन के प्रवास से लौटने पर भिक्षुगण बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उनका कुशल-क्षेम पूछने के बाद उनसे प्रश्न किया, "भिक्षुओं ! क्या तुम अप्रमत्त स्थिति का अनुपालन कर पाये ? क्या तुम ईमानदारी के साथ ध्यान-साधना कर पाए ?" तब भिक्षुओं ने उन्हें पूरी कहानी सुनाई । बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं ! अगर मनुष्य दूसरों को शिक्षा देना चाहता है तो उसे पहले अपने ऊपर लागू कर लेना चाहिए क्योंकि इन परिस्थितियों में वह अगर अपने आप को संयमित कर दूसरों को संयमित होने के लिए कहता है तो दूसरे भी संयमित हो जाएंगे।"
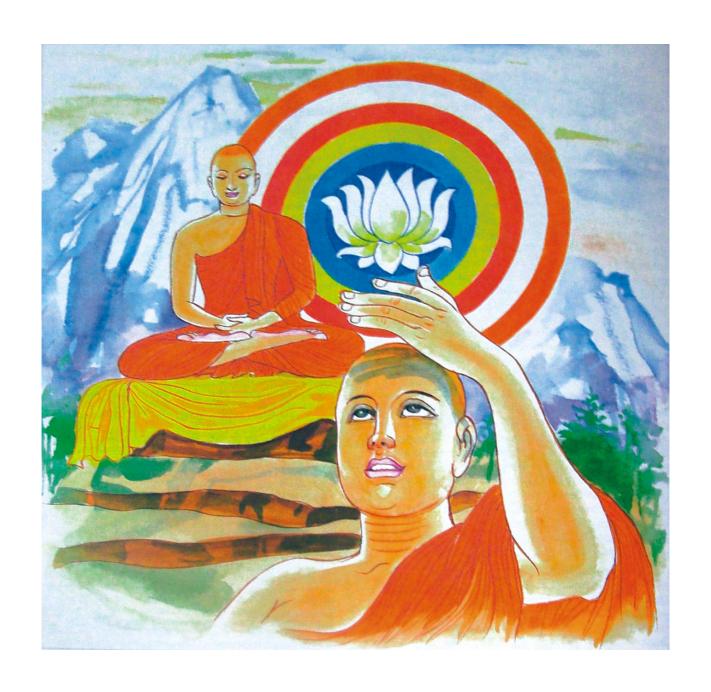
गाथा: अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं ।।160।।

अर्थ: मनुष्य अपना रक्षक स्वयं है। कोई दूसरा रक्षक कैसे हो सकता है ? स्वयं अपना रक्षक होना - यह एक विचित्र एवं कठिन प्रकार का रक्षा का विषय है। इस रक्षा को आत्म-अनुशासन से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी यात्रा आप स्वयं न करेंगे तो कौन करेगा ?
कुमार कस्सप थेर के माता की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक नवविवाहिता युवती ने अपने पति से प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। उसने उसे अनुमति दे दी। अज्ञानवश वह देवदत्त के विहार में भिक्षुणियों के पास जा वहाँ प्रव्रजित हो गई। यह भिक्षुणी प्रव्रज्या ग्रहण करने के पूर्व से ही गर्भवती थी, लेकिन वह इस बात को नहीं जानती थी। समय के अन्तराल से गर्भ दिखने लगा। तब दूसरी भिक्षुणियाँ उसे अपने गुरू देवदत्त के समक्ष ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ आश्रम में वापस जाने का आदेश दे दिया। इस पर उसने दूसरी भिक्षुणियों से कहा, "मैं तुम्हारे शिक्षक देवदत्त की शिष्या नहीं बनना चाहती थी; मैं तो यहाँ गलती से आ गई हूँ। कृपया मुझे जेतवन विहार ले चलो, मुझे बुद्ध के पास ले चलो।" इस प्रकार वह बुद्ध के सम्मुख पहुँची। बुद्ध जानते थे कि उसने प्रव्रज्या से पूर्व ही गर्भधारण किया था, अत: वह निर्दोष थी। उन्होंने कोसल राजा पसेनदि, एवं अनाथपिंडिक और पूर्वाराम विहार की दाता विशाखा को बुला भेजा। तब उन्होंने उपालि को निर्देश दिया कि इस विषय की पूरी जाँच की जाये।

विशाखा उस नवयुवती को एक पर्दे के पीछे ले गई, उसने जाँच की और भन्ते उपालि को सूचित किया कि प्रव्रज्या ग्रहण करते समय वह गर्भिणी थी। स्थविर उपालि ने तब घोषणा की कि वह स्त्री पूर्णतया निर्दोष है, उसने शीलभंग नहीं किया है। समय आने पर उसे एक पुत्र पैदा हुआ। राजा पसेनदि ने उसे गोद ले लिया और उसका नाम कुमार कस्सप रखा गया। जब वह बालक सात वर्ष का हुआ तब उसे पता चला कि उसकी माता एक भिक्षुणी थी। वह भी बुद्ध से आर्शीवाद ग्रहण कर सामनेर बन गया। जब वह बड़ा हुआ तब वह संघ में शामिल कर लिया गया। भिक्षु के रूप में उसने बुद्ध से ध्यान साधना का आलंबन लिया और तपस्या करने वन में चला गया। वहाँ उसने पूरी तन्मयता, लगन और परिश्रम से ध्यान-साधना की और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गया। लेकिन वह आगे भी बारह वर्षों तक वन में निवास करता रहा। इस प्रकार उसकी माँ ने उसे बारह वर्षों तक नहीं देखा और वह अपने पुत्र को देखने के लिए तड़प रही थी। एक दिन उसे देखकर, भिक्षुणी माँ अपने पुत्र के पीछे रोती हुई, उसका नाम पुकारती हुई दौड़ पड़ी। अपनी माँ को देखकर, कुमार कस्सप ने सोचा कि अगर वह अपनी माँ से अच्छा व्यवहार करेगा तो उसकी माँ की उसमें आसक्ति बनी रह जाएगी और उसका भविष्य बरबाद हो जाएगा। अत: उसके भविष्य का ध्यान रखते हुए ताकि उसका निर्वाण बाधित न हो जाए, उसने जान-बूझकर कड़े शब्दों में कहा, "तुम कैसी भिक्षुणी हो ? संघ की सदस्या हो पर एक पुत्र के प्रति अपनी आसक्ति के बंधन को भी तोड़ नहीं सकी ?"

माँ ने सोचा कि उसका पुत्र उसके प्रति अति कठोर था। उसने अपने पुत्र से पूछा कि उसके कहने का अभिप्राय क्या था। कुमार कस्सप ने जो कुछ पहले कहा था उसकी पुनरावृति कर दी। उसके उत्तर को सुनकर कुमार कस्सप की माँ ने चिंतन किया, "निश्चय ही पिछले बारह वर्षों से मैंने इस पुत्र के लिए आँसू बहाये हैं; फिर भी इसने मुझे कठोर वचन बोले हैं और निष्ठुरता से व्यवहार किया है। मेरे इस स्नेह का क्या लाभ ?" उसी समय पुत्र के प्रति आसक्ति की निरर्थकता का उसे भान हो गया। उसने तुरंत पुत्र के प्रति आसक्ति तोड़ देने का निर्णय लिया। अपनी आसक्ति को पूर्णत: तोड़कर, कुमार कस्सप की माता ने उसी दिन अर्हत्व प्राप्त कर लिया। तब बुद्ध ने संदेश दिया, "भिक्षुओं ! देवलोक की प्राप्ति के लिए या अर्हत्व की प्राप्ति के लिए आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते। आपको स्वयं सतत् कठिन प्रयत्न करना पड़ेगा।"

गाथा: अत्तना हि कतं पापं, अत्तजं अत्तसम्भवं ।
अभिमत्थति दुम्मेधं, वजिरं वस्ममयं मणिं ।।161।।

अर्थ: जैसे वज्रमणि (हीरा) पत्थर को छेद डालती है उसी प्रकार स्वयं द्वारा कृत, उत्पादित एवं पोषित पापकर्म उस पापकर्मी को मथ डालती है।

अपने किए पाप का फल आप ही भोगेंगे
महाकाल उपासक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी उपोसथ के दिन, महाकाल नाम का एक उपासक जेतवन विहार गया। उसने उपोसथ व्रत रखा तथा रात्रि-पर्यन्त धर्म-श्रवण करता रहा। संयोगवश उसी रात कुछ चोर किसी गृहस्थ के घर में चोरी के लिए घुसे। उसी समय गृहस्वामी जाग गया। चोर चोरी का धन लेकर भागे और उनके पीछे गृहस्वामी। चोर सभी दिशाओं में भागने लगे। कुछ विहार की दिशा में दौड़े। पौ फट रहा था और महाकाल विहार के निकट स्थित तालाब में मुँह-हाथ धो रहा था। चोरों ने चोरी का धन महाकाल के सामने फेंक दिया और भाग गए। जब गृहस्वामी आया तो उसने महाकाल को चोरी के सामान के साथ देखा। उसे चोर समझकर वे उसपर चिल्लाने लगे, उसे धमकाया और खूब पीटा। महाकाल की उसी स्थल पर मृत्यु हो गई। प्रातःकाल जब कुछ युवा भिक्षु और सामनेर विहार से जल लेने आए तो महाकाल का मृत शरीर देखा और उसे पहचान लिया।

विहार लौटने पर उन्होंने बुद्ध को, जो कुछ देखा था, उसकी सूचना दी और उनसे कहा, "आदरणीय भन्ते ! वह उपासक जो संपूर्ण रात्रि-पर्यन्त धर्म-श्रवण कर रहा था, उसकी मृत्यु हो गई है। ऐसा उपासक ऐसी दर्दनाक मृत्यु का पात्र नहीं था।" बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! यदि तुम उसके द्वारा इस जन्म में किए गए कर्मों की दृष्टि से देखते हो, तो निश्चय ही उसकी ऐसी दुःखद मृत्यु नहीं होनी चाहिए थी। पर सच्चाई तो यह है कि उसने अपने एक पूर्व जन्म में किए गए बुरे कर्म का भुगतान मात्र किया है। अपने एक पूर्व जन्म में जब वह राजा का सेवक था, तब उसका दिल किसी अन्य की पत्नी पर आ गया और उसने उसके पति को पीट-पीट कर जान से मार दिया था। इस कारण इस जन्म में उसकी यह दुर्गति हुई है। निश्चय ही बुरे कर्म, न केवल हमारे लिए कष्ट लाते हैं, वरन् वे हमें नरक में भी ले जाते हैं। हीरा पत्थर का ही एक रूप है, पत्थर से ही उत्पन्न होता है, लेकिन वही हीरा उस पत्थर को काट देता है। बुरे कर्म का सृजन उस बुरे कर्म करने वाले को ही समाप्त कर देता है।

गाथा: यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं, मालुवा सालमिवोततं ।
करोति सो तथत्तानं, यथा नं इच्छति दिसो ।।162।।

अर्थ: शील हीन व्यक्ति के अत्यधिक दुराचार का कर्म फल मालुआ लता की तरह होता है। वह लता वृक्ष पर बढ़ती है और फिर वृक्ष का ही नाश कर देती है। बुरे कर्म करने वाले का कर्म भी उसका उसी प्रकार नाश कर देता है।

बुरे कर्म करने वाला, उसी के बोझ से दब जाता है
देवदत्त की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। तभी बुद्ध उधर से गुजरे, उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे और आगे कुछ यूँ कहा, "भन्ते ! देवदत्त सचमुच न केवल बिना शील वाला व्यक्ति है, वह अति दुष्ट भी है। उसने राजा अजातशत्रु का विश्वास जीतकर और उनसे मैत्री बढ़ाकर अनुचित ढंग से प्रतिष्ठा प्राप्त करने की चेष्टा की है तथा धन भी कमाया है। उसने अजातशत्रु को यह समझाने की भी कोशिश की है कि अपने पिता से मुक्त होकर वह (अजातशत्रु) तुरंत ही एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। इस प्रकार देवदत्त से गुमराह होकर, अजातशत्रु ने अपने पिता, एक न्यायप्रिय राजा, की हत्या कर दी। इतना ही नहीं, देवदत्त ने तीन बार आपकी, हमारे परम श्रद्धेय गुरू की हत्या करने का भी प्रयत्न किया है। देवदत्त सचमुच ही एक अति दुष्ट व्यक्ति है तथा वह नहीं सुधरेगा।"

भिक्षुओं को सुनने के बाद बुद्ध ने कहा कि देवदत्त ने इसी जन्म में उन्हें मारने की चेष्टा नहीं की थी; वरन् पूर्व जन्मों में भी प्रयत्न किया था। तब उन्होंने एक हिरण-शिकारी की कथा सुनाई।

एक समय की बात है। बनारस में जब राजा ब्रह्मदत्त राज करते थे तब बुद्ध का जन्म एक हिरण के रूप में हुआ था और देवदत्त उस जन्म में एक हिरण-शिकारी था। एक दिन शिकारी ने एक वृक्ष के नीचे एक हिरण के पद-चिन्ह देखे। अतः उसने उस पेड़ पर बाँस का एक मचान बनाया और हाथ में भाला लेकर हिरण के आने की प्रतीक्षा करता रहा। मृग आया, पर अति सावधानी पूर्वक। शिकारी ने उसे बहुत सँभल-सँभल कर आते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए वृक्ष के कुछ फल तोड़ उसकी ओर फेंक दिए। लेकिन उससे मृग और अधिक सतर्क हो गया। उसने बहुत सावधानी से देखा और पाया कि शिकारी पेड़ पर छिपा हुआ है। उसने इस प्रकार दिखाया मानो उसकी दृष्टि शिकारी पर नहीं पड़ी हो और धीरे-धीरे वापस मुड़ चला। कुछ दूर जाने पर उसने वृक्ष को इस प्रकार संबोधित किया, "हे वृक्ष ! तुम सदैव अपने फल उर्ध्व दिशा से नीचे धरती की ओर भेजते हो, परन्तु आज तुमने प्रकृति के नियम का उल्लंघन किया है और तुम्हारे फल तिरछी दिशा में धरती पर गिरे हैं। चूँकि तुमने वृक्षों के प्राकृतिक धर्म का उल्लंघन किया है अतः मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ।"

हिरण को मुड़कर जाते हुए देखकर शिकारी ने अपना भाला धरती पर फेंक दिया और कहा, "हाँ, आज तुम बचकर जा सकते हो क्योंकि मैंने आज गणना करने में, अनुमान लगाने में, गलती कर दी।" भविष्य के बुद्ध और उस जन्म के मृग ने कहा, "हे शिकारी ! तुमने आज निश्चय ही अपनी गणना में गलती की लेकिन तुम्हारे द्वारा किए गए बुरे कर्म, गणना की गलती नहीं करेंगे; वे निश्चय ही तुम्हारा अनुसरण करेंगे।" इस प्रकार देवदत्त ने सिर्फ इसी जन्म में मेरी हत्या की कोशिश नहीं की थी वरन् पूर्व जन्म में भी की थी, यद्यपि वह कभी भी सफल नहीं हुआ। बुद्ध ने आगे सम्बोधित किया, "भिक्षुगण ! जैसे मालुआ लता जिस वृक्ष से लिपट जाती है, वह उसी वृक्ष की प्राण-लीला समाप्त कर देती है, उसी प्रकार शील विहीन पुरूष भी दुराचार से उत्पन्न तृष्णा के वश में अंततः नरक में जा गिरता है।"

गाथा: सुकरानि असाधूनि, अत्तनो अहितानि च ।
यं वे हितं च साधुं च, तं वे परमदुक्करं ।।163।।

अर्थ: बुरी बातों का करना आसान है यद्यपि उनसे अपनी ही हानि होती है। पर उसे करना अति कठिन है जिससे अपना भला होता हो।

अच्छे कर्म करना दुष्कर है, बुरे कर्म आसान
देवदत्त द्वारा संघ में फूट डालने की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय जब बुद्ध वेणुवन में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और उन्हें सलाह दी कि बुद्ध अब बूढ़े हो चले हैं, संघ का दायित्व उसे (देवदत्त) सौंप दिया जाए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा, "मैं सारिपुत्त तथा मोग्गलान को भिक्षुसंघ नहीं दे सकता तो फिर तुम्हें कैसे दे दूँगा ?" उसे डाँटा भी। उसे 'थूक घोंटने वाला' कहकर भी सम्बोधित किया। उस समय से देवदत्त बुद्ध से घृणा करने लगा।

एक बार देवदत्त ने भिक्षुओं के लिए पाँच नियम बनाने का प्रस्ताव रखा - (1) भिक्षु जीवन पर्यन्त वन में वास करें। (2) भिक्षु को जीवन पर्यन्त भिक्षाटन द्वारा जीना होगा। (3) भिक्षु आजीवन पाँसूकूल (कफन से बना चीवर) धारण करेगा। (4) भिक्षु वृक्ष के नीचे ही वास करें (5) भिक्षु आजीवन माँस-मछली का सेवन न करें। बुद्ध इन नियमों के विरुद्ध नहीं थे पर कई कारणों से वे इन्हें विनय के नियमों के रूप में थोपना नहीं चाहते थे।

देवदत्त ने प्रचार करना शुरू कर दिया कि उसके प्रस्तावित नियम बुद्ध के द्वारा बनाए गए संघ के नियमों से अधिक उपयोगी थे। कई नए भिक्षु उसकी बातों के झाँसे में आ गए। इस कारण संघ में फूट पड़ने लगी। बुद्ध को इसकी जानकारी मिली तो उसे बुलाया और समझाया कि वह बहुत ही गलत काम कर रहा है तथा उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। पर देवदत्त के ऊपर उनकी सलाह का कोई असर नहीं हुआ। वह दुराचरण और दुष्कर्म में लिप्त था। अतः भली सीख भी उसे ठीक नहीं लगी।

एक दिन आनन्द थेर भिक्षाटन हेतु राजगृह में निकले। रास्ते में देवदत्त मिल गया। उसने बताया कि आज से वह अपना संघ अलग चलाएगा। आनन्द ने पूछा,"क्या तुमने सचमुच निर्णय ले लिया है कि संघ का विभाजन कर अलग संघ चलाओगे ?" गर्व से उसने "हाँ" कहा। आनन्द विहार में आए और उन्होंने बुद्ध को पूरी बात बतलाई।

बुद्ध ने आनन्द को बताया कि देवदत्त बहुत ही गलत काम कर रहा है। "इन बुरे कर्मों के लिए वह नरक में गिरेगा।" उन्होंने यह भी समझाया,"सज्जनों के साथ भलाई अच्छी लगती है और दुर्जनों के साथ भलाई बुरी। इसी प्रकार दुर्जनों के साथ बुराई अच्छी लगती है और सज्जनों को बुराई बुरी लगती है।" बुद्ध ने संघ बुलाकर घोषणा की कि देवदत्त के द्वारा किए जा रहे दुष्कर्मों के प्रति संघ जिम्मेवार नहीं है। देवदत्त ने बुद्ध को तीन बार मारने का प्रयत्न किया पर तीनों ही बार असफल रहा।

टिप्पणी: देवदत्त, संघ में फूट डालकर, नए भिक्षुओं को लेकर चला गया पर बाद में सारिपुत्त और मोग्गलान के प्रवचनों को सुन वे पुनः बुद्ध संघ में वापस आ गए।

देवदत्त को कर्म के देवता ने एक बहुत ही सुनहरा अवसर दिया था जिसे उसने गँवा दिया। वह बुद्ध का नजदीकी रिश्तेदार था और अगर उसने ईमानदारी से सत्कर्म किए होते तो अनेक भिक्षुओं की तरह वह भी उस जन्म में अर्हत्व प्राप्त कर सकता था। पर ऐसे सत्कर्म करने के बदले वह बचपन से ही बुद्ध से जलता था। उसकी प्रतिस्पर्द्धा तथा दुष्टता का पहला उदाहरण बचपन में ही दिख गया था जब उसने एक निर्दोष, उड़ते हुए हंस को वाण से मार गिराया था और वह हंस तड़पता हुआ सिद्धार्थ की गोद में आ गिरा, जो उस समय बागीचे में टहल रहे थे। देवदत्त हंस माँगता रहा पर सिद्धार्थ ने देवदत्त को हंस नहीं दिया। बात राजदरबार तक जा पहुँची। वहाँ विद्वानों ने मंत्रणा की। किसी ने देवदत्त के पक्ष में कहा; किसी ने सिद्धार्थ के पक्ष में पर अंत में सर्वसम्मति से निर्णय दिया गया, "जीवन लेना आसान है पर जीवन की रक्षा करना कठिन। अगर हंस मर जाता तो वह देवदत्त का हो जाता पर हंस जीवित था। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। अतः हंस सिद्धार्थ को दे दिया जाए।"

अपने बुरे कर्मों के कारण ही देवदत्त की मृत्यु बड़ी ही दयनीय हुई और मृत्यु के बाद वह नरक में गया।

गाथा: यो सासनं अरहतं, अरियानं धम्मजीविनं ।
पटिक्कोसति दुम्मेधो, दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।
फलानि कट्ठकस्सेव, अत्तघञ्ञाय फल्लति ।।164।।

अर्थ: जो धर्मज्ञ, श्रेष्ठ अर्हतों के शिक्षा की पापमयी, बुरी धारणा के कारण निन्दा करता है वह अपना ही नाश आमंत्रित करता है जैसे बाँस के फूल का आगमन बाँस के वृक्ष के नाश का कारण होता है।

अपनी बरबादी अपने ही हाथ
काल स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में एक बुजुर्ग महिला काल स्थविर का अपने पुत्र की तरह ध्यान रखती थी। एक दिन उसने अपने पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों की प्रशंसा सुनी और उसकी तीव्र इच्छा होने लगी कि वह जेतवन विहार जाए और धर्म-श्रवण करे। इसलिए काल स्थविर के सम्मुख उसने अपनी इच्छा प्रकट की; लेकिन उस संन्यासी ने उसे प्रोत्साहित करने के बजाय, उसे सलाह दी कि उसे वहाँ नहीं जाना चाहिए। उसने काल से तीन बार प्रार्थना की पर तीनों ही बार उसने उसे वहाँ न जाने की सलाह दी। लेकिन एक दिन काल थेर के निर्देश के बावजूद उस स्त्री ने जेतवन जाने की ठानी। उसने अपनी बेटी को काल थेर की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की सलाह दी और स्वयं जेतवन विहार जा पहुँची। उधर काल थेर अपने दैनिक भिक्षाटन के लिए उस महिला के घर पहुँचा। उसे पता चला कि वह महिला जेतवन विहार गई हुई है। उसने सोचा, "संभव है कि इस गृहस्वामिनी महिला का मेरे ऊपर से विश्वास उठ रहा है।" इसलिए वह जल्दी-जल्दी चलकर जेतवन विहार पहुँच गया। वहाँ उसने उसे बुद्ध का प्रवचन सुनते हुए पाया। वह सम्मानपूर्वक बुद्ध के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे कहा, "भन्ते ! यह स्त्री अति मंद बुद्धि वाली है। वह धर्म के गूढ़ तत्वों को नहीं समझ सकेगी। कृपया उसे सिर्फ दान एवं शील की शिक्षा दें।"

बुद्ध बहुत अच्छी तरह जानते थे कि काल स्थविर ऐसी बात ईर्ष्यावश अपने निजी स्वार्थ से कह रहा था। इसलिए उन्होंने काल स्थविर से कहा, "संन्यासी ! तुम मूर्खतावश तथा गलत धारणाओं के कारण बुद्ध की शिक्षा की निंदा कर रहे हो। ऐसा कर तुम स्वयं अपने नाश का कारण बन रहे हो।"

कुछ ऐसे अज्ञानी जन भी होते हैं जो कुछ गलत धारणा के कारण सच्चे संतों की शिक्षा के प्रसार में बाधक होते हैं। वे अपनी बरबादी स्वयं आमंत्रित करते हैं। फूल देने पर जैसे बाँस का पेड़ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ये लोग भी नष्ट हो जाते हैं।
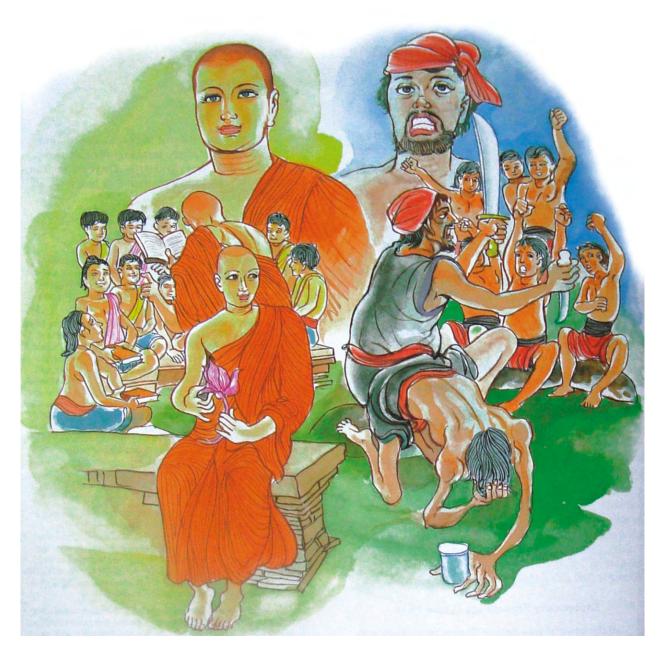
गाथा: अत्तना व कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति ।
सुद्धी असुद्धी पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ।।165।।

अर्थ: मनुष्य स्वयं द्वारा किए गए दुष्कर्म द्वारा अपने को मलिन (अपवित्र) करता है और स्वयं द्वारा किए गए सत्कर्म द्वारा अपने को पवित्र रखता है। अपने को पवित्र या अपवित्र रखना - दोनों ही स्वयं पर निर्भर करता है। कोई दूसरा मनुष्य दूसरे को पवित्र या अपवित्र नहीं कर सकता।

शुभ, अशुभ का निर्माता मनुष्य स्वयं
चूलकाल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन चूलकाल उपासक ने उपोसथ उपवास व्रत रखा और सारी रात जेतवन विहार में धर्म-श्रवण करता रहा। पौ फटने पर वह निकट के एक तालाब में अपना हाथ-मुँह धो रहा था। उसी समय कुछ चोर चोरी का सामान लिए उधर से गुजरे और गृहस्वामी द्वारा पकड़े जाने के भय से सामान तालाब के किनारे फेंक कर भाग गये। गृहस्वामी उन चोरों के पीछे दौड़ता-दौड़ता उस तालाब तक पहुँचा और चूलकाल के पास ही चोरी का सामान पड़ा देखकर निष्कर्ष निकाला कि चूलकाल ने ही चोरी की है। अत: गृहस्वामी अपने साथियों के साथ चूलकाल को भला-बुरा कहने लगा और पीटने लगा। भाग्यवश उसी समय गाँव की कुछ दासियाँ वहाँ पानी भरने आईं और यह दृश्य देखा। उन्होंने गृहस्वामी को बताया कि चूलकाल ने संपूर्ण रात्रि धर्म-श्रवण किया था और उसने चोरी नहीं की थी। तब गृहस्वामी और उसके सेवकों ने उसे छोड़ दिया।

मुक्त होकर चूलकाल विहार पहुँचा और उसने बुद्ध को सारी घटना सुनाई। बुद्ध ने उसे समझाया, "तुम इसलिए नहीं बच गए क्योंकि उन पनिहारिनों ने तुम्हें बचा लिया, बल्कि तुम इसलिए बच गए क्योंकि तुमने चोरी नहीं की थी। मनुष्य का कर्म ही उसकी रक्षा करता है और उसका कर्म ही उसे दंड दिलाता है। बुरे कर्म कर लोग पाप का सृजन करते हैं, नरक जाते हैं, और कष्ट पाते हैं। इसके विपरीत सत्कर्म कर लोग पुण्य का सृजन करते हैं और निर्वाण तक जाते हैं।"

टिप्पणी : चूलकाल और महाकाल की कथा का जिक्र धम्मपद में अन्यत्र भी आता है। इसी अध्याय "अत्त वर्ग" के पाँचवीं गाथा में महाकाल की कथा है।

महाकाल भी प्रातः काल तालाब के किनारे रात्रि पर्यन्त धर्म-श्रवण कर मुँह, हाथ धो रहा था जब चोर सामान फेंक कर भाग गए। गृहस्वामी एवं उसके दासों ने पीट-पीटकर उसे मार दिया जबकि चूलकाल की जान बच गई। महाकाल को मृत्यु का वरण करना पड़ा क्योंकि एक पूर्व जन्म में राज सेवक के रूप में उसने एक पराई स्त्री पर नजर लगाई थी और उसे प्राप्त करने के लिए उसके निर्दोष पति को मार दिया था।

हमारे कर्म हमारी छाया की तरह सदैव हमारे साथ चलेंगे; हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे।

गाथा: अत्तदत्थं परत्थेन, बहुनापि न हापये ।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय, सदत्थपसुतो सिया ।।166।।

अर्थ: मनुष्य को दूसरों की सेवा करते समय अपने कल्याण की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। अपने कल्याण को ध्यान में रखकर ही दूसरों के प्रति सत्कर्म करना चाहिए।

अपना लाभ सर्वोपरि है
अत्तदत्थ थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जब बुद्ध ने चार मास पर्यन्त महापरिनिर्वाण की घोषणा की तब अनेक भिक्षु चिन्तित हो गए कि उसके बाद क्या होगा। अतः बुद्ध का सानिध्य प्राप्त करने के लिए उनमें होड़ लग गई। विहार में अत्तदत्थ नामक एक भिक्षु भी रहता था। उसने भी बुद्ध के महापरिनिर्वाण के विषय में सुना। अन्य भिक्षुओं की तरह उसे भी दुख हुआ पर अन्य मित्रों के विपरीत उसने निर्णय लिया कि वह अपने आप को संपूर्ण समर्पण के साथ ध्यान-साधना में लगा देगा और परिनिर्वाण से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लेगा। अतः ध्यान कुटी में बैठकर वह पूरी तन्मयता से ध्यान-साधना करने लगा। उसके मित्र भिक्षुओं को उसका यह एकान्तपन ठीक नहीं लगा। वे उसे बुद्ध के पास ले गए और उनसे कहा, "भन्ते ! यह भिक्षु हम लोगों की तरह आपसे प्रेम और श्रद्धा रखता हुआ प्रतीत नहीं होता है; वह अपने आप में ही खोया रहता है।" तब बुद्ध ने स्पष्ट किया "यह भिक्षु साधुवाद का पात्र है; इसने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण से पूर्व ही वह 'अर्हत्व' प्राप्त करेगा; इसी कारण वह इसके लिए पूर्ण समर्पण के साथ कार्यरत है।"

बुद्ध ने शिष्यों को बताया, "अत्तदत्थ जैसा भिक्षु मुझे बहुत प्रिय है। जो मुझमें प्रेम और श्रद्धा रखते हैं उन्हें अत्तदत्थ की तरह होना चाहिए। पुष्प, अगरबत्ती और दीप अर्पित करके मेरे प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित नहीं करते हो और न मेरे निकट बैठकर मुझमें अपनी श्रद्धा को दृढ़ कर सकते हो। त्रिरत्न का अनुशरण कर, धर्म का अनुपालन कर ही तुम अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हो।"

टिप्पणी: 'स्वधर्म' निम्नकोटि का भी हो तो भी वह दूसरों द्वारा कृत धर्म की तुलना में अच्छा है। मनुष्य को किसी भी कीमत पर स्वधर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।

हवाई जहाज में यात्रा करते समय निर्देश दिया जाता है कि केबिन में हवा का दबाव कम होने की स्थिति में जब ऑक्सीजन मॉस्क नीचे गिर जाए तो पहले उसे अपने मुँह पर लगाना चाहिए और तब सहयात्रियों की मदद करनी चाहिए। ऐसा निर्देश क्यों दिया जाता है ? अगर ऑक्सीजन की कमी से मनुष्य स्वयं मर जाएगा तब वह दूसरों की सेवा क्या करेगा ? अतः अपना सर्वोत्तम कल्याण अर्थात् 'निर्वाण प्राप्ति' जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य होना चाहिए और बाकी सारे कर्त्तव्य उसके बाद आने चाहिए।

सिद्धार्थ ने घर छोड़ा, जंगल गए, साधना की और निर्वाण को प्राप्त किया। उनका यह कृत क्या 'स्वार्थ' का परिचायक है ? कदापि नहीं।

उपर्युक्त गाथा का अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि बुद्ध शिक्षा स्वार्थी होने के लिए प्रेरित करती है। कदापि नहीं। बौद्ध साहित्य में निःस्वार्थ सेवा पर पूरा जोर दिया गया है। 'निर्वाण' की प्राप्ति अपने लिए नहीं होती है। निर्वाण प्राप्ति पर 'स्व' का ही कल्याण नहीं होता ; समस्त मानव जाति का कल्याण होता है। बूँद जब सागर से मिल जाती है तो मात्र बूँद को विशालता की अनुभूति नहीं होती है, महानता का भान नहीं होता है; सागर भी समझ ाता है कि वह भी पहले की तुलना में धनी हो गया है।

DHAMMAPADA
ATTA VAGGA

संसार को
समझने की कला
धम्मपद
लोक वर्ग
गाथा और कथा
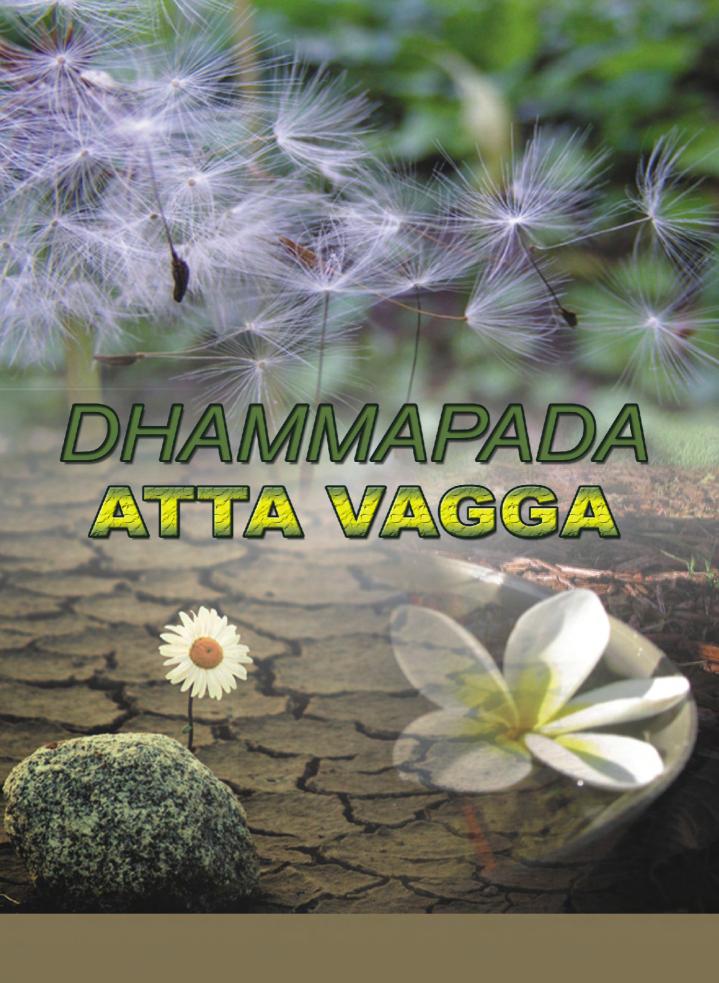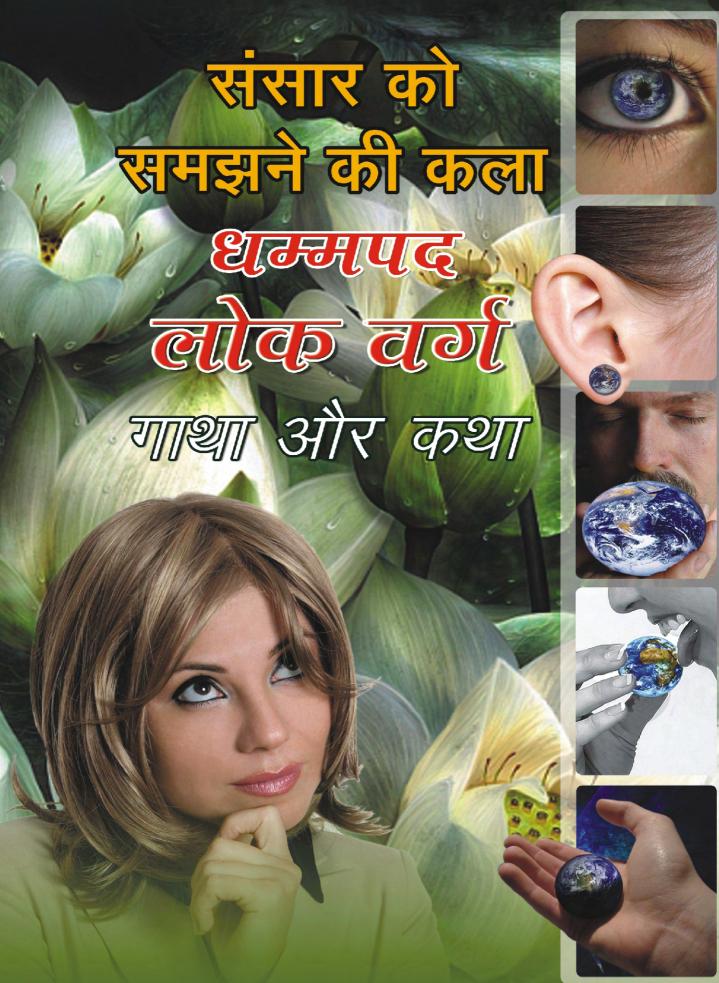
संसार को समझने की कला

धम्मपद

लोक वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

लोक वर्ग

गाथा: हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य, न सिया लोकवड्ढनो ।।167।।

अर्थ: अधम समझा जाने वाला आचरण नहीं करना चाहिए जिनसे प्रमाद की उत्पत्ति होती है। मिथ्याचरण करने वालों का संग नहीं रखना चाहिए।

सांसारिक चीजों में आसक्ति न रखें
युवा भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन एक युवा भिक्षु एक स्थविर के साथ विशाखा के निवास पर पहुँच गया। यागुपान कर, स्थविर किसी विशेष कार्य से कहीं चला गया और युवा भिक्षु को विशाखा के घर पर ही छोड़ दिया। विशाखा की पौत्री उस तरूण भिक्षु के लिए जल छान रही थी और जब उसने पानी में अपनी परछाईं देखी तो वह मुस्कुराई। उसे मुस्कुराता देख, तरूण भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और वह भी मुस्कुरा दिया। जब उसने युवा भिक्षु को अपनी तरफ मुस्कुराते हुए देखा तब उसने अपना आपा खो दिया और तमतमायी हुई बोली, "अरे ओ सिरमुण्डे ! मुझे देखकर क्यों हँस रहा है ?" युवा भिक्षु ने प्रत्युत्तर दिया, "सिरमुण्डी है तू और तेरे माता-पिता भी सिरमुण्डे हैं !" इस प्रकार वे दोनों लड़ पड़े और वह लड़की रोती हुई अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा ने आकर भिक्षु को समझाया, "मेरी पोती से नाराज मत होवो। संन्यासी के बाल मुड़े हुए होते हैं, उसके हाथ और पैरों की अँगुलियों के नाखून कटे होते हैं और वह पुराने चिथड़े कपड़ों से बने चीवर धारण करता है तथा वह भिक्षा-पात्र लेकर भोजन की भिक्षा प्राप्त करता है। इस नवयुवती ने जो कहा वह अक्षरशः सत्य था।" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "आप जो कह रही हैं वह सत्य है पर क्या उसे मुझे सिरमुण्डे कहकर सम्बोधित करना चाहिए था ?" उसी समय बुजुर्ग भिक्षु भी वापस आ गया; लेकिन विशाखा एवं बुजुर्ग भिक्षु दोनों ही उस युवा भिक्षु और तरूणी को समझाने में विफल रहे जो आपस में लड़ रहे थे।

इसके थोड़ी ही देर बाद, बुद्ध का पदार्पण हुआ और उन्हें उस झगड़े की जानकारी दी गई। बुद्ध को मालूम था कि समय परिपक्व था जब तरूण भिक्षु स्रोतापत्ति फल प्राप्त कर सकता था। उन्हें लगा कि उन्हें उस तरूण युवक के पक्ष में बोलना चाहिए। अतः उन्होंने विशाखा से कहा, "विशाखा ! तुम्हारी पौत्री को क्या अधिकार था कि वह मेरे पुत्र को सिरमुंडा कहकर सम्बोधित करे; क्या मात्र इसलिए कि उसने सिर मुँड़ा रखा है ? आखिर अगर उसने सिर मुँड़वाया है तो इसलिए कि वह बुद्ध के संघ में प्रविष्ट हो सके। क्यों, यह सच नहीं है ?" इसे सुनकर, तरूण भिक्षु अपने घुटनों के बल झुककर बुद्ध को साष्टांग प्रणाम किया और बोला, "भन्ते ! सिर्फ आप ही मेरा दृष्टिकोण समझ रहे हैं; मेरे शिक्षक और इस महान विहार को बनाने वाली विशाखा जी भी मुझे समझ नहीं पा रही हैं।" बुद्ध ने जान लिया कि यह तरूण भिक्षु स्रोतापन्न में प्रविष्ठ होने की स्थिति में पहुँच चुका है। अतः उसे समझाया, "काम-वासना के अधीन होकर हँसना उचित नहीं है; बुरे विचारों का सृजन करना अनुचित है।" तरूण युवक इस पर चिंतन कर स्रोतापन्न फल में प्रविष्ट कर गया।

टिप्पणी : समाज में जो कर्म तुच्छ तथा निकृष्ट समझे जाते हैं उन्हें नहीं करना चाहिए। इस तरह मिथ्या धारणा से बचनी चाहिए। मिथ्याचरण द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करने की चाह त्याग देनी चाहिए।

पाँच प्रकार के इन्द्रिय सुखों (कामगुण) का सेवन करने वाला अंततः पशुओं की श्रेणी में आ जाता है। सिर्फ इन्द्रिय सुखों में लिप्त रहने वाला प्राणी अंततः निम्न लोक की ओर ही जाता है।

संसार में पहले से ही बहुत दु:ख है। अतः समझदार व्यक्ति वह है जो उन दु:खों को और अधिक नहीं बढ़ाता है।

गाथा: उत्तिट्ठे नप्पभ्मज्जेय्य, धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च ।।168।।

अर्थ: सत्य की ओर जाग्रत होवो; अंधकार में न रहो। सत्य के साथ धर्म का आचरण करो। धर्मचारी पुरुष दोनों ही जगह सुखपूर्वक सोयेगा।

धर्मी यहाँ भी सुखी रहता है और वहाँ भी
राजा शुद्धोदन की कथा
स्थान : निग्गोधाराम, कपिलवस्तु

सिद्धार्थ ने गृह त्याग के समय प्रण किया था कि जब तक सत्य के दर्शन न होंगे वे अपने पुराने राज्य कपिलवस्तु में वापस नहीं जायेंगे।

बोध गया के पीपल के वृक्ष के नीचे उन्हें सत्य के दर्शन हो चुके थे। अब वे सिद्धार्थ नहीं रह गए थे; सिद्धार्थ से बुद्ध बन चुके थे, अतः पिता और पत्नी के आग्रह पर उन्होंने कपिलवस्तु आने का कार्यक्रम बनाया। जब वे कपिलवस्तु पहुँचे तो उनके सगे-सम्बन्धी उनसे मिलने और उनके प्रति सम्मान प्रकट करने हेतु उनके सम्मुख प्रस्तुत हुए। इस अवसर पर अपने सगे सम्बन्धियों का मान-मर्दन करने हेतु अपनी सिद्धियों द्वारा विशिष्ट रत्नचंक्रमण का निर्माण किया और वहीं से उन्हें उपदेश दिया। उनके सम्बन्धियों का हृदय तुरंत ही श्रद्धा से भर गया और राजा शुद्धोदन से लेकर सभी सम्बन्धी बुद्ध के प्रति श्रद्धा प्रकट करने लगे। उसके बाद वर्षा शुरू हो गई और ऐसी वर्षा हुई जैसी पहले कभी देखी नहीं गई थी। कोई भी कुआँ और तालाब खाली नहीं रहा। लोग चर्चा करने लगे कि ऐसी वर्षा कभी नहीं हुई।

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं ! ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि मेरे सगे-सम्बन्धियों के ऊपर ऐसी वृहद् वृष्टि हुई है; पूर्व जन्म में भी ऐसा हो चुका है।" ऐसा कहकर उन्होंने वेस्सन्तरजातक की कथा सुनाई। धर्मश्रवण कर सभी सगे-संबंधी प्रस्थान कर गए पर किसी ने भी अगले दिन के लिए भोजन-दान का आमंत्रण नहीं दिया। राजा ने भी 'मेरा पुत्र मेरे यहाँ नहीं आएगा तो फिर कहाँ जाएगा ?' -- ऐसा सोचकर उन्हें औपचारिक रूप से आमंत्रित नहीं किया और राजमहल चले गए। लेकिन राजमहल पहुँचने के बाद उन्होंने भिक्षुओं के लिए भोजन एवं आसन का प्रबंध करने का आदेश दे दिया।

दूसरे दिन जब बुद्ध ने भिक्षाटन हेतु कपिलवस्तु में प्रवेश किया तब सोचा, "भूतकाल में बुद्धगण इस प्रकार अपने पिता के नगर में प्रवेश करते समय सीधा अपने सगे-सम्बन्धियों के घर जाते थे या द्वार-द्वार जाकर भिक्षाटन करते थे ?" यह जानकर कि वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे, बुद्ध ने प्रथम गृह से भिक्षाटन प्रारंभ किया और द्वार-द्वार जाने लगे तथा भिक्षा ग्रहण करने लगे। राजकुमार के भिक्षाटन की बात पूरे नगर में आग की तरह फैल गई। लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा हो सकता है। आज उन्हें लग रहा था कि राजकुमार एक राजकुमार न होकर उनकी ही तरह एक सामान्य व्यक्ति थे। अतः उनका कौतूहल और आश्चर्य आकाश को छू रहा था। सारा का सारा नगर उस ओर दौड़ गया जिधर बुद्ध भिक्षाटन कर रहे थे। सभी अपनी सुध-बुध खो अपने प्रिय राजकुमार का दर्शन पाने हेतु, जो जैसा था, वैसा ही चल दिया।

चोटी गूंथने वाली, आधी चोटी ही गूंथकर चल पड़ी, कोई आँखों में काजल लगा रही थी वह एक आँख में काजल लगाये बिना ही घर से निकल पड़ी, जूड़ा बाँधने वाली अधखुले जूड़े के साथ ही भागी, किसी ने सिर्फ एक ही कंगन पहना। इस प्रकार नगर का सारा का सारा सैलाब वहाँ जा पहुँचा जहाँ बुद्ध और भिक्षुगण भिक्षाटन कर रहे थे। इधर यशोधरा को भी राजकुमार के भिक्षाटन की सूचना मिली, वह भी दौड़ी और दौड़कर बुद्ध के चरणों पर गिर गई। बुद्ध ने उसे सहारा देकर उठाया। उसके नेत्रों से अश्रु की बरसात रूक नहीं रही थी।

राजा को भी यह समाचार मिला। वे क्रोध से आग बबूला हो गए। अपनी मूँछों को रगड़ते हुए आगे-पीछे तेजी से कदम बढ़ाने लगे। जमीन पर कई बार मुड़कर थूका। अपने अश्व को बुलवाया और चल पड़े अपने पुत्र को समझाने के लिए। उनके पीछे मंत्री परिषद भी चल पड़ा। राज महल से निकल आगे मुड़ते ही

गाथा: धम्मं चरे सुचरितं, न नं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च ।।169।।

अर्थ: धर्म का पूर्णता से आचरण करें। प्रमाद के साथ इसका आचरण न करें। जो अप्रमाद के साथ पूर्ण ढंग से इसका आचरण करेगा वह इस जन्म में भी और इस जन्म के बाद भी सुखपूर्वक सोयेगा।

सुचरित धर्म में चरें
राजा शुद्धोदन की कथा

अपार भीड़ से उनका सामना हुआ तथा दूर से ही उन्होंने राजकुमार को देख लिया। बुद्ध का शांत एवं तेजमय स्वरूप देखकर राजा का क्रोध जाता रहा। फिर भी घोड़े से उतर, पैदल चलकर बुद्ध के सम्मुख पहुँच, बहुत हिम्मत जुटाकर पूछा, "क्या पुत्र का इसी प्रकार स्वागत करना था ? राजकुमार को अपने ही राज्य में अपने ही लोगों से भिक्षाटन करना था ? पूरे राज्य के नागरिकों के सामने मुझे लज्जित करना चाहते हो ?" राजा के पुत्र-प्रेम ने उनके अंदर तूफान खड़ा कर रखा था और वह पुत्र-प्रेम एक बार पुन: अपने पुत्र को अपनी मुट्ठियों में बाँध लेना चाहता था। पर हवा, बादल को क्या कोई अपनी मुट्ठी में बाँध सकेगा ? बाँधने की चेष्टा करेगा पर वह मुट्ठी से निकल जाएगा। बुद्ध निर्विकार थे। उन्होंने राजा को समझाया, "हमारे वंश की यही परंपरा है।" नृप ने सुनकर कहा, "हमारे परिवार में सौ महासामंतों की बात मुझे याद है पर हमारे कुल में आज तक किसी ने ऐसा कार्य नहीं किया है।" तब बुद्ध ने समझाया, "कुल परंपरा मर्त्यों की नहीं हुआ करती पर बुद्ध के अवतारों की परंपरा युग-युग तक चलती है। पहले भी बुद्ध हुए हैं और आगे भी बुद्ध होंगे और पिताश्री ! मैं उनमें से ही एक हूँ। जो कुछ अभी हो रहा है वही पहले भी घटित हो चुका है।" बुद्ध ने तब, लौकिक प्रेम अपनाकर, पितृ ऋण वश जो निधि पाई थी उसका प्रथम पुष्प पिता को अर्पित किया। कौन सी निधि ? मोक्ष के आठ सोपान तथा चतुष्टांग आर्य सत्य जिनका अनुपालन कर संसार के सभी नर-नारी,मूर्ख, पंडित, छोटे-बड़े, युवा-वृद्ध इस भवचक्र से छूटकर अमृतमय निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। पीयूष से प्रिय वचन सुनकर राजा पुलकित थे, उन्होंने बुद्ध का भिक्षा-पात्र स्वयं अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार उस दिन महाराजा ने शांति और कल्याण-मार्ग पर चलने हेतु मंगलमय मार्ग पर प्रवेश किया।

कुछ समय बाद यशोधरा भी भिक्षुणी के रूप में दीक्षित हो गई, राहुल भी सामनेर बन गया। तब एक दिन एक शिष्य ने धर्म-चर्या के समय यह शंका रख दी कि सब रागों से रहित, संपूर्ण वासना से मुक्त तथा कुसुम सा कोमल, कामिनी-स्पर्श त्यागने वाले तथागत ने यशोधरा को आलिंगन क्यों करने दिया ? यह सुन बुद्ध प्रसन्न मन से ये वचन बोले, "महाप्रेम ने लघु प्रेम को सहज भाव से सहारा देकर उच्च किनारे पर लगने दिया। ध्यान रहे कि अगर कोई व्यक्ति भव बंधन से छूट जाता है तो उसे मुक्ति का गर्व कर किसी जीव का दिल न दुखाना चाहिए। यह मुक्ति, जिसको भी मिली एक बार में नहीं मिली।"

उसके बाद बुद्ध ने अपने पूर्वजन्म की एक कथा सुनाई। लाखों वर्ष पूर्व बुद्ध उस जन्म में 'राम' नामक वैश्य के रूप में सागर तट पर रहते थे। यशोधरा भी उस जन्म में उनकी संगिनी थी। उसका नाम 'लक्ष्मी' था।" घर अति दरिद्र था, अत: भारी धन पाने हेतु मैं परदेश चला गया। लक्ष्मी तब आँखों में आँसू भरकर जल- थल- पथ की विकट आपदा सर पर न लेने के लिए कहती। पर मैंने साहस सहित सागर पथ पर, पथ के अंधड़ झेल, अति दुष्कर कर्म कर भीषण जल से एक अति निर्मल मोती प्राप्त किया। वह इतना कीमती था कि कोई भी भूप अपना राजकोष रिक्त कर ही खरीद सकता था। प्रसन्न मन से ग्राम लौटकर देखा कि पूरे देश पर घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। अपने द्वार पर जाकर देखा कि जिसके हेतु मैंने इतना सब श्रम उठाया था वह द्वार पर अचेत पड़ी थी। मुश्किल से आँखें खोली पर मुख से कुछ बोल न सकी। तब मैंने गाँव में घूमकर घोषणा की, "एक जीव के लिए राज्य के मूल्य के बराबर वस्तु रखता हूँ। लक्ष्मी के मुख के लिए जो भी तनिक सा भी अन्न दे जाए वह यह बहुमूल्य रत्न ले जाए।" तब किसी ने तीन सेर बाजरा दिया और वह रत्न ले गया। जब तन में प्राण आए, तब साँस लेकर लक्ष्मी बोली, "तुम्हारा प्रेम सच्चा है, तुम्हारा त्याग मुझे अब दिखा है।" "इस प्रकार मैंने जो उस जन्म में मोती पाया था उसे तुरंत भले काम में लगाया था। इस जन्म में जो कुछ भी ज्ञान मैंने प्राप्त किया है वह उस जन्म के तिल के बराबर त्याग की तुलना में मेरू पर्वत समान है या उस जन्म के एक बूँद की तुलना में महासागर के समान है। आज का मेरा प्रेम उस मेरू पर्वत या सागर की तरह विशाल है। मनुष्य को सदा उन जीवों को सहारा देना चाहिए जो निर्बल हैं और इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए।"

गाथा: यथा पुब्बुलकं पस्से, यथा पस्से मरीचिकं ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति ।।170।।

अर्थ: बुलबुला को देखो, कितना अनित्य है ? मृगमरीचिका को देखो। भ्रांति होती है ! अगर तुम संसार को इस प्रकार देखोगे, तो फिर मृत्यु-राजा तुम्हें नहीं देख सकेंगे।

जीवन की सच्चाई देखें
अनेक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय भिक्षुओं के एक समूह ने बुद्ध से ध्यान-साधना का विषय सीखा और वन में जाकर ध्यान का अभ्यास करने लगे। लेकिन वे अधिक प्रगति नहीं कर पाए। अतः वे वन से लौट आए और बुद्ध के पास और अधिक उपयुक्त ध्यान का विषय समझने के लिए गये। रास्ते में उन्होंने मृग मरीचिका देखी और उस पर चिंतन किया। जैसे ही वे विहार के अन्दर प्रविष्ट हुए, बड़े जोरों से वर्षा होने लगी। वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदों से बुलबुले बनने लगे जो तुरंत समाप्त हो जाते थे। इन बुलबुलों को देख भिक्षुओं ने सोचा, "हमारा यह शरीर भी इन पानी के बुलबुलों की तरह नाशवान है।" इस प्रकार चिंतन करते हुए उन्हें शरीर की अनित्यता का भान हो गया। प्रवचन के अन्त में भिक्षुगण स्रोतापन्न प्राप्त कर गए।

बुद्ध ने उन्हें अपने कुटीर से देखा, उनके सम्मुख प्रकट हुए और यह गाथा कही।

गाथा: एथ पस्सथिमं लोकं, चित्तं राजरथूपमं ।
यत्थ बाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं ।।171।।

अर्थ: आध्यात्मिक अज्ञानी जन इन संसार के चकाचौंध (जिसकी तुलना चित्रित राजरथ से की जाती है) में पूरी तरह डूबे रहते हैं। जिन्हें सत्य की जानकारी है वे इन सांसारिक चीजों से आसक्त नहीं होते। वे संसार को वैसा ही देखते हैं जैसा वह वास्तविक रूप में है।

ज्ञानी शरीर में आसक्ति नहीं रखता
राजकुमार अभय की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार राजकुमार अभय ने सीमान्त प्रदेश जाकर वहाँ एक विद्रोह शांत किया। इससे उसके पिता, बिंबिसार इतने प्रसन्न हुए कि उसके लौटने पर उसे सात दिनों के लिए राज्य तथा एक नर्तकी दे दी। इस प्रकार राजकुमार सात दिनों तक अपने महल से बाहर नहीं निकला और राजमहल के अन्दर ही विभिन्न प्रकार के भोग-विलासों का आनंद लेता रहा। आठवें दिन वह नदी तट पर गया और वहाँ स्नान किया। स्नान करने के बाद वह पुनः मनोरंजन हेतु उद्यान में प्रविष्ट हुआ। वहाँ आसन पर विराजमान होकर उस नर्तकी का नृत्य देखने लगा। लेकिन जैसे ही वह नाचने और गाने लगी, उसके पेट में भीषण पीड़ा उठी और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गई।

राजकुमार अभय इस महिला की मृत्यु से तड़प उठा। उसे तुरंत विचार आया, "बुद्ध को छोड़कर कोई और नहीं है जो मेरे दुःख को समाप्त कर सके।" इसलिए वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, "भन्ते, कृपया मेरे दुःख की ज्वाला को शांत कीजिए।" बुद्ध ने उसे शांत करते हुए समझाया, "कुमार, भूतकाल के असंख्य जन्मों में अनगिनत बार यह स्त्री तुम्हारे जीवन में इस प्रकार मरी है, और जितने आँसू तुमने उस पर बहाया है उसे नापा नहीं जा सकता।" यह सुनकर राजकुमार शांतचित्त हो गया। तब बुद्ध ने उसे और समझाया, "राजकुमार, दुःख मत करो। केवल अज्ञानी जन ही अपने आप को दुःख के समुद्र में गिरने देते हैं।"

टिप्पणी : इस गाथा की कथा तथा सन्तति महामात्य की कथा में समानता है। दोनों ही कथाओं में सन्तति तथा अभय ने सीमान्त प्रदेशों में विद्रोह शांत किया था और पुरस्कार के रूप में उन्हें एक नर्तकी भी दी गई थी। दोनों ने भोग-विलास का आनन्द लिया और दोनों को ही अपार दुःख हुआ जब नर्तकी की मृत्यु हो गई। जीवन से वैराग्य हो गया और बुद्ध की शिक्षा से उन्हें शान्ति मिली। लेकिन महामात्य सन्तति ने जहाँ निर्वाण प्राप्त किया, राजकुमार अभय स्रोतापन्न में ही प्रतिष्ठित हो पाया। इन उदाहरणों से हम पाते हैं कि आगे हमारा विकास कितना होगा यह अंततः हमारे प्रयत्न पर निर्भर करता है।

इस गाथा में संसार को एक चित्रित राजकीय रथ के समान बताया गया है। राजकीय रथ साधारण रथ की तुलना में अति सुन्दर होता है। हम इस पर चढ़कर सवारी करते हैं और आनन्दित होते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी पुरूष भी संसार में लिप्त होकर आनन्दित होता है।

जिस प्रकार समझदार व्यक्ति रथ पर सवार होकर सो नहीं जाता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष संसार में लिप्त नहीं होता। ज्ञानी पुरूष अगर रथ पर सवार होता है तो फिर उसमें जाकर सो नहीं जाता; वरन् जैसे ही रथ की यात्रा समाप्त हो जाती है वह रथ से उतर जाता है अर्थात् ज्ञानी पुरूष को रथ (संसार) का व्यवहार यात्रा (निर्वाण की प्राप्ति) सम्पन्न करने के लिए करना चाहिए न कि उस रथ (संसार) में रम जाने के लिए।
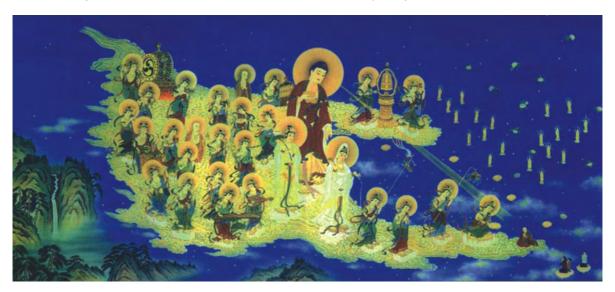
गाथा: यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सो इमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।172।।

अर्थः अगर जीवन के प्रथम काल में (गलती से) प्रमाद में लिप्त
होकर भी अपने को सुधारकर जीवन के
उत्तर काल में प्रमाद में लिप्त नहीं होता वह मेघों से मुक्त हुए
चन्द्रमा की तरह संसार में अपना प्रकाश फैलाता है।

प्रमाद को भूलिए, धर्म पर चलिए
थेर सम्मुञ्जनि की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेर सम्मुञ्जनि अपना अधिकांश समय विहार की सफाई में लगाया करते थे। उन दिनों भन्ते रेवत भी उस विहार में रह रहे थे। सम्मुञ्जनि के विपरीत थेर रेवत अपना अधिकांश समय ध्यान, मनन और चिंतन में लगाया करते थे। थेर रेवत के व्यवहार को देखकर सम्मुञ्जनि ने सोचा कि दूसरा भिक्षु अपना समय बरबाद कर रहा है। अतः एक दिन सम्मुञ्जनि थेर रेवत के पास गया और उनसे कहा, "तुम बहुत आलसी हो, दूसरों के विश्वास और श्रद्धा के आधार पर मिलने वाले भोजन पर जीते हो, तुम्हें नहीं लगता कि तुम्हें यदा-कदा कमरों की, अहाते की या बरामदों की सफाई करनी चाहिए ?" थेर रेवत ने उसे उत्तर दिया, "मित्र, एक भिक्षु को अपना सारा समय सफाई में ही नहीं लगाना चाहिए। उसे सुबह में सफाई करनी चाहिए। उसके बाद भिक्षाटन के लिए जाना चाहिए। भोजनोपरान्त, उसे अपने शरीर पर चिंतन करते हुए उसकी नश्वरता की अनुभूति करनी चाहिए या उसे सायंकाल तक बौद्ध-शिक्षा को कंठस्थ करना चाहिए। उसके बाद अगर इच्छा हो तो वह पुनः सफाई कर सकता है।" थेर सम्मुञ्जनि ने थेर रेवत की सलाह को हृदयंगम कर लिया और उस पर अमल करता हुआ शीघ्र ही अर्हत बन गया।

दूसरे भिक्षुओं ने विहार में गंदगी जमा होते हुए देखा तो उन्होंने सम्मुञ्जनि से पूछा कि अब वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं करता है। सम्मुञ्जनि ने उत्तर दिया, "मित्रों ! जब मैं प्रमाद में था तब मैं हर समय सफाई ही किया करता था लेकिन अब मैं कभी प्रमाद में लिप्त नहीं होता।" जब उन भिक्षुओं ने उसका उत्तर सुना तो उन्हें संदेह हुआ; अतः वे बुद्ध के पास गए तथा बोले, "भन्ते ! थेर सम्मुञ्जनि कहते हैं कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है; वे अपनी शेखी बघार रहे हैं" बुद्ध ने उन्हें समझाते हुए कहा, "सम्मुञ्जनि सचमुच अर्हत हो गया है; वह सच बोल रहा है। अगर हम अपनी गलतियाँ सुधार लेते हैं तो हम उसी प्रकार चमक उठते हैं जैसे बादलों से बाहर निकलकर चन्द्रमा चमक उठता है।"

टिप्पणी : जीवन में गलतियाँ किसने नहीं कीं ? महामोग्गलान जैसे शिष्य ने भी की और अंतिम जीवन में भयावह मृत्यु को प्राप्त हुए। गलतियाँ करना स्वाभाविक है। अतः महत्वपूर्ण बात यह है कि गलतियाँ की जाती हैं तो गलतियों के बाद उनसे ऊपर उठने की चेष्टा की जाती है या नहीं ? सूर्य या चंद्रमा बादल में छिपेंगे ही, स्वाभाविक ही है, पर महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अंततः उस बादल से बाहर निकलकर फिर चमकते हैं या नहीं ?

एक कहावत है, "कोई महात्मा नहीं हुआ जिसका भूतकाल न हो और कोई पापी नहीं हुआ जिसका भविष्य न हो।"

अतः जीवन से निराश न होकर, प्रमाद से ऊपर उठकर, सतत् आगे बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए।

गाथा: यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति ।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।173।।

अर्थ: अगर व्यक्ति अपने द्वारा किए गए बुरे कर्मों को (भविष्य में) सदकर्मों द्वारा बदल देता है तो वह उसी प्रकार चमकने लगता है जैसा बादलों से निकला हुआ चाँद।

बुराई को भलाई से जीता जाता है

थेर अंगुलिमाल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अंगुलिमाल राजा परसेनदि के मुख्य पुरोहित का पुत्र था। उसका प्रारंभिक नाम अहिंसक था। जब वह बड़ा हुआ तो उसे अध्ययन हेतु तक्षशिला भेजा गया। अहिंसक कुशाग्र बुद्धि का था और आज्ञाकारी भी था। इसलिए गुरू और उसकी पत्नी उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। इस कारण दूसरे शिष्य उससे जलने लगे। इसलिए वे गुरू के पास गए और उन्होंने गलत शिकायत की कि अहिंसक का गुरू पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध है। पहले तो शिक्षक ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया पर जब बार-बार इसकी पुनरावृति की गई तो उसे विश्वास हो गया; इसलिए उसने बालक से बदला लेने की सोची। लेकिन अगर वह उसकी जान लेता तो उसकी निंदा होती। अतः उसने एक योजना बनाई जो जान लेने से भी अधिक बुरी थी। उसने अहिंसक को एक हजार नर-नारी की हत्या करने को कहा और जिसके एवज में वह उसे मूल्यवान ज्ञान देगा। वह बालक इस ज्ञान को तो प्राप्त करना चाहता था पर लोगों की हत्या नहीं करना चाहता था। लेकिन अंत में गुरू की आज्ञा को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उसने लोगों को मारना शुरू कर दिया और मारे गए लोगों की गिनती रखने के लिए हर व्यक्ति को मारने के बाद उसकी एक अंगुली को काटकर अपने गले में लगी माला में डाल लेता था। इस प्रकार उसका नाम 'अंगुलिमाल' पड़ गया। वह राज्य का सबसे खतरनाक डाकू जाना जाने लगा। राजा ने स्वयं उसके कारनामों को सुना और उसको पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाल की माता मंतनी ने राजा की योजना के विषय में सुना तो प्रेमवश अपने पुत्र की जान बचाने के उद्देश्य से वन में प्रवेश कर गई। उस समय तक अंगुलिमाल के गले की माला में नौ सौ निन्यानबे अंगुलियाँ हो गई थीं। सिर्फ एक और अँगुली डालने से यह संख्या एक हजार हो जाती।

उस दिन प्रातःकाल अपने अवलोकन में बुद्ध ने अंगुलिमाल को देखा और महसूस किया कि अगर उन्होंने उचित कार्रवाई न की तो एक अंतिम व्यक्ति की शीघ्र ही हत्या करने की इच्छा से वह अपनी माँ की ही हत्या कर देगा और इस प्रकार नरक में जा गिरेगा। अतः दया भाव से अभिभूत होकर बुद्ध जंगल में वहाँ पहुँचे जहाँ अंगुलिमाल विद्यमान था। अनेक रातों की निद्रा के अभाव में अंगुलिमाल पूरी तरह थक चुका था। दूसरी तरफ उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह अंतिम व्यक्ति की यथा शीघ्र हत्या कर ले और इस प्रकार एक हजार लोगों का कार्य पूर्ण कर ले। उसने अपना मन बना लिया कि जो भी पहला व्यक्ति मिलेगा, वह उसे मार देगा। अचानक जैसे ही उसने अपनी दृष्टि घुमाई, उसे बुद्ध दिख गए और वह अपनी तलवार उठाये उनकी ओर दौड़ा। लेकिन वह दौड़ता रहा, दौड़ता रहा और दौड़ते-दौड़ते थक गया पर बुद्ध तक नहीं पहुँच पाया। तब बुद्ध की ओर देखते हुए वह दूर से ही चिल्लाया, "हे संन्यासी, रुको ! रुको !" बुद्ध ने जबाब दिया, "मैं तो रुक गया हूँ, केवल तुम नहीं रुके हो।" अंगुलिमाल को बुद्ध की बात समझ में नहीं आई। अतः उसने पूछा, "भिक्षु ! तुम क्यों कहते हो कि तुम रुक गए हो और मैं नहीं रुका हूँ ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, "मैं कहता हूँ कि मैं रुक गया हूँ क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना बंद कर दिया है, मैंने सभी प्राणियों के प्रति दुर्भावना समाप्त कर दी है, और मैंने अपने आप को अंतर्ज्ञान द्वारा सभी के प्रति प्रेम, धीरज, दया और करुणा में प्रतिष्ठित कर दिया है। लेकिन तुमने लोगों की हत्या और उनके प्रति दुर्व्यवहार को समाप्त नहीं किया है।" बुद्ध के मुखारविंद से ये वाक्य सुनकर, अंगुलिमाल ने चिंतन किया, "यह एक ज्ञानी के शब्द हैं। यह भिक्षु अपार ज्ञानी है और अपार साहसी भी। वह निश्चय ही स्वयं बुद्ध होगा। वह निश्चय ही यहाँ आया होगा कि मुझे प्रकाश के दर्शन करा सके।" ऐसा सोचकर उसने अपनी तलवार फेंक दी और बुद्ध से प्रार्थना की कि उसे भी अपने संघ में शामिल कर लें। बुद्ध ने तुरंत उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे प्रव्रजित कर दिया।

गाथा: अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति ।
सकुणो जालमुत्तोव, अप्पो सग्गाय गच्छति ।।174।।

अर्थ: यह संसार अंधे के समान है। यहाँ देखने वाले थोड़े ही हैं। थोड़े ही हैं जो जाल से मुक्त पक्षी की तरह स्वर्ग को जाते हैं। बहुत कम ही हैं जो सुगति को प्राप्त कर पाते हैं।

दुख के पिंजड़े से निकलोगे ?
पेशकार कन्या की कथा

स्थान : आलवी

एक बार आलवी में भोजन-दान समारोह के बाद बुद्ध ने शरीर की नश्वरता पर धर्म-प्रवचन दिया। जो बातें बताईं वे मुख्यत: इस प्रकार थीं, "जीवन अस्थायी है और मृत्यु स्थायी और अवश्यम्भावी। मौत तो आनी ही है, जीवन का अंत मृत्यु में होना ही है। जीवन शाश्वत नहीं है; मृत्यु है एक सम्पूर्ण सच्चाई।" बुद्ध ने श्रोतागण को सदैव जाग्रत रहने का भी संदेश दिया और जीवन की वास्तविक सत्यता को देखने की सलाह दी। उन्होंने यह भी कहा, "जैसे किसी के पास लाठी या भाला हो तो वह किसी भी शत्रु (जैसे एक जहरीला साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो सदैव मृत्यु के प्रति सजग रहता है, वह सहजता से मृत्यु का सामना कर लेता है। संसार छोड़ने पर उसकी सुगति होती है।" अनेक श्रोताओं ने उनके इस प्रवचन को गम्भीरता से नहीं लिया, लेकिन एक सोलह साल की पेशकार कन्या संदेश को समझ गई। वह पूरी लगन से तीन वर्षों तक मृत्यु पर चिंतन-मनन करती रही। धर्म प्रवचय के बाद बुद्ध जेतवन-विहार लौट आए। तीन वर्षों के बाद एक दिन बुद्ध ने अपने दिव्य चक्षु से संसार का अवलोकन किया और वह पेशकार कन्या उनकी दृष्टि में आई। उन्हें लगा कि यह कन्या स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। अत: धर्म-प्रवचय के लिए बुद्ध दूसरी बार आलवी पधारे। जब उस लड़की ने सुना कि बुद्ध अपने शिष्यों के साथ आये हैं तो वह बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए अधीर हो उठी। लेकिन उसके पिता ने उसे शीघ्र ही सूत से बना तसर लाने को कहा। इसलिए उसने जल्दी ही सूत से तसर बना लिया और उसे साथ ले, पिता को देने के लिए चल पड़ी। मार्ग में वह कुछ क्षणों के लिए वहाँ रुक गई जहाँ लोग बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हुए थे।

बुद्ध को ज्ञात था कि यह युवती उनके प्रवचन को सुनने आयेगी। वे यह भी जानते थे कि जब वह अपने पिता को सूत का तसर देगी तो उसी समय उसकी मृत्यु हो जाएगी। अत: यह जरूरी था कि पिता से मिलने से पहले ही उसे धर्म-प्रवचय दिया जाये; लौटने की प्रतीक्षा न की जाये। इसलिए जब वह श्रोताओं में आकर बैठ गई तो बुद्ध ने ग्रीवा ऊँची कर उसकी ओर देखा। उस कुमारी को लग गया कि बुद्ध उससे ही कुछ कहने जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, "कुमारी ! कहाँ से आ रही हो ? " "नहीं जानती भन्ते।" "नहीं जानती ? " उत्तर था, "जानती हूँ भन्ते ! " "जानती हो ? " "नहीं जानती हूँ भन्ते ! " लोगों को उसका इस प्रकार का उत्तर अटपटा लगा और कुछ को लगा कि वह बुद्ध के प्रति अपनी अश्रद्धा प्रकट कर रही है। अत: वे कुछ कहने को उठे पर बुद्ध ने उन्हें संकेत से बैठा दिया। तब बुद्ध ने पूछा कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उसने वैसा क्यों दिया था।

लड़की ने उत्तर दिया, "भन्ते ! आप तो जानते ही थे कि मैं जुलाहे के घर से तसर की टोकरी लेकर आ रही थी और पिताजी के पास जा रही थी। अत: मुझे लग गया कि आपके प्रश्न का भाव गंभीर है। मुझे लगा कि आप शायद पूछना चाहते हैं कि मैं किस लोक (योनि) से पैदा हुई हूँ तथा किस लोक (योनि) में जाऊँगी। अत: मैंने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानती।"

बुद्ध ने उसका उत्तर सुनकर उसे साधुवाद दिया और अन्य दो प्रश्नों के उत्तर का स्पष्टीकरण माँगा। कुमारी ने उत्तर दिया, "मुझे मालूम है कि मेरी मृत्यु होगी अत: मैंने कहा, 'जानती हूँ भन्ते !' लेकिन इतना नहीं जानती कि मृत्यु कब होगी। अत: कहा, 'नहीं जानती, भन्ते "

तब शास्ता ने उसे बताया, "तुमने सभी प्रश्नों के सही उत्तर दिये हैं और तुमको पुन: साधुवाद है।" उन्होंने अन्य श्रोताविंद को सम्बोधित करते हुए कहा, "तुम लोगों ने इन प्रश्नों की गूढ़ता के विषय में नहीं सोचा था अत: उस कुमारी पर नाराज हो रहे थे। जो मनुष्य अपने ज्ञान चक्षु से नहीं देखते, उनमें और अंधों में कोई अंतर नहीं है।"

लड़की पिता के पास पहुँची, गलती से पिता ने बुनने वाला शटल खींच दिया। शटल की लाठी लड़की की छाती पर पड़ी और वह प्रारब्धानुसार मृत्यु को प्राप्त हो गई। उसका पिता बहुत दुखी हुआ और अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित बुद्ध के पास पहुँचा और संघ में प्रवेश की प्रार्थना की। इस प्रकार वह भिक्षु हो गया और समय के अन्तराल में अर्हत हो गया।

गाथा: हंसादिच्चपथे यन्ति, आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा, जेत्वा मारं सवाहिनिं ।।175।।

अर्थ : हंस स्वच्छन्दता से आकाश में विचरण करते हैं उसी प्रकार ऋद्धि से योगीजन भी आकाश की ओर गमन कर जाते हैं। धैर्यवान पंडितजन मार की सेना को पराजित कर इस संसार के आवागमन चक्र को पार कर निर्वाण की ओर निकल जाते हैं।

इरादा हो तो निर्वाण में देरी क्यों ?

तीस भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी दिन तीस भिक्षु इधर-उधर से घूमते हुए बुद्ध के पास पहुँचे। भन्ते आनन्द ने उन्हें आते हुए देखा। उस समय आनन्द बुद्ध की सेवा करने जा रहे थे। उन भिक्षुओं को देखकर आनन्द ने सोचा, "पहले इन भिक्षुओं की शास्ता से भेंट करा देता हूँ। जब वे चले जायेंगे तब तथागत की सेवा कर दूँगा। इस बीच वे बुद्ध से अपना वार्तालाप कर लेंगे।" ऐसा सोचकर आनन्द ने उन्हें कुटी में प्रवेश करा दिया जहाँ शास्ता विराजमान थे और स्वयं बाहर बैठकर उन तीस भिक्षुओं के बाहर आने का इन्तजार करने लगे।

उधर भिक्षुगण अंदर पहुँचे। शास्ता ने उनका कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद उनके अनुकूल बहुत ही प्रेमपूर्वक धर्म-प्रविचय किया। शास्ता के उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे सभी भिक्षु तुरंत अर्हत्व प्राप्त कर गए। अर्हत्व प्राप्त करने के बाद जरूरी नहीं था कि वे उसी दरवाजे से बाहर आते जिधर से वे अंदर प्रवेश किए थे। वे आकाश मार्ग होकर आकाश की ओर चले गए।

उधर आनन्द बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे कि भिक्षुगण बाहर आ जायें तो वे अंदर जाकर शास्ता की सेवा करें। पर ऐसा नहीं हुआ। अंत में इंतजार करते-करते थककर, आनन्द कुटी में बुद्ध के पास प्रविष्ठ हुए। उन्होंने वहाँ न तो किसी भिक्षु को देखा और न कोई कोलाहल सुना। इससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। अंत में जब उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया तो उन्होंने शास्ता से पूछ ही लिया, "भन्ते ! तीस भिक्षु आपके दर्शन हेतु आए थे। वे कहाँ हैं ?" "आनन्द वे तो चले गए।" "पर वे किस मार्ग से चले गए ? मैंने तो उन्हें देखा ही नहीं।" "आकाश मार्ग से चले गए।" "भन्ते ! क्या वे सभी क्षीणास्त्रव थे ?" "हाँ आनन्द ! वे सभी क्षीणास्त्रव थे। अतः उन्होंने मुझ से धर्मश्रवण कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया।"

जिस समय शास्ता आनन्द से चर्चा कर रहे थे, उसी समय आकाश में कुछ हंस विचरण कर रहे थे। बुद्ध ने आनन्द को उन हंसों को दिखाया और बताया, "आनन्द ! जिस साधक ने चारों ऋद्धिपादों की साधना कर ली है, वे निर्विघ्न आकाशमार्ग से गमन कर सकते हैं, जैसे ये हंस आकाश में उड़ रहे हैं।"

गाथा: एकं धम्मं अतीतस्स, मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स, नत्थि पापं अकारियं ।।176।।

अर्थः सत्य का अतिक्रमण करने वाला तथा असत्य का आश्रय लेने वाला प्राणी जिसे परलोक की कोई चिंता नहीं है, हर प्रकार का पाप करने में सक्षम है।

दुष्ट व्यक्ति के पाप की सीमा नहीं
चिंचा माणविका की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध धर्म प्रविचय कर रहे थे। उनकी शिक्षा से हजारों की संख्या में लोग उनके संघ में शामिल होने लगे। उनकी कीर्ति दोपहर के सूर्य के समान चमकने लगी। दूसरी ओर उनके प्रतिद्वन्दी सम्प्रदायों की वही स्थिति हो गई जो सूर्य के सामने जुगनुओं की हो जाया करती है। जनता में उनकी पूछ नहीं रही और उनसे मिलने वाला आर्थिक लाभ भी बंद हो गया। उनके पेट पर लात पड़ी और इससे उबरने के लिए उन्होंने एक षड़यंत्र सोचा। उन्होंने एकान्त में बैठकर विचार-विमर्श किया कि बुद्ध का चरित्र हनन किया जाए, इस प्रकार उनकी अपकीर्ति फैलेगी और वे अपना उल्लू साध सकेंगे।

ऐसा सोचकर उन्होंने अपने सम्प्रदाय की एक साधिका, चिंचा माणविका को तैयार किया। वह देखने में अति खूबसूरत थी तथा मायावी गुणों से भी सम्पन्न थी। उस दिन से शाम में उसने सज-धजकर फूलों का गुच्छा लेकर जेतवन विहार जाने का सिलसिला प्रारंभ कर दिया। जब रास्ते में लोगों ने पूछा कि वह कहाँ जा रही है तो उसने उत्तर दिया, "तुम्हें जानकर क्या लाभ कि मैं कहाँ जा रही हूँ ?" उसके बाद वह जेतवन विहार के पास अपने सम्प्रदाय के विहार में चली जाती और रात में वहीं रुकती। सुबह में फिर वह इस प्रकार वापस आती कि बुद्ध को प्रातः काल दर्शन करने वाले लोग उसे देखते तो उन्हें लगता कि वह जेतवन से आ रही है। लोग जब पूछते तो वह कहती, "मैं श्रमण गौतम के साथ गन्धकुटी में रात्रि बिताकर आ रही हूँ।" तीन चार महीनों बाद उसने अपने पेट पर कुछ कपड़े बाँध लिए जिससे लगने लगा कि वह गर्भवती है। आठ महीनों बाद उसने अपने पेट पर लकड़ियों का गट्ठर बाँध दिया और फिर उसके ऊपर कपड़ा इस प्रकार लपेट लिया जिससे लगने लगा कि उसके पेट में आठ मास का गर्भ है। उसने अपने पैर और हथेलियों को लकड़ी से पीटकर उसे फुला दिया और अपने आप को थकी हुई दिखाने लगी जिससे लोगों को उस पर विश्वास हो जाए कि वह आठ महीने की गर्भवती है। इस प्रकार नाटक के एक कलाकार की तरह तैयार होकर वह संध्या वेला में जेतवन विहार पहुँची जहाँ बुद्ध प्रवचन दे रहे थे।

वह बुद्ध के पास जाकर खड़ी हो गई और जोर-जोर से लड़ने के अंदाज में कहने लगी, "हे महाश्रमण ! तुम सिर्फ दूसरों को उपदेश देते हो। मैंने तुम्हारा गर्भ धारण किया है और तुम्हें मेरी चिंता तक नहीं है। तुम सिर्फ आनन्द भोग करना जानते हो।" बुद्ध ने प्रवचन देना बंद कर दिया और सिंहनाद करते हुए कहा, "बहन, केवल तुम और मैं जानता हूँ कि तुम सत्य बोल रही हो या नहीं।" चिंचा माणविका ने जोर से बोलते हुए कहा, "अवश्य, तुम सही कह रहे हो, जो मेरे और तुम्हारे बीच हुआ है उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं ?"

इस संवाद से इंद्र का सिंहासन हिल उठा। उन्हें पता चल गया कि बुद्ध के ऊपर घोर असत्य लांछन लग रहा है। अतः उनके आदेश पर देवपुत्रों ने चार छोटे चूहों का रूप धारण किया और उस स्त्री के शरीर पर चढ़कर सारी रस्सियाँ काट दीं जिनसे लकड़ियाँ बँधी थीं। भरभरा कर सभी लकड़ियाँ नीचे गिरीं और उसके पैर कट गए; बंधे वस्त्र बिखर गए; पेट चिपक गया। इस प्रकार उसका षड़यंत्र पकड़ा गया। भीड़ में से लोग क्रुद्ध होकर बोलने लगे, "तू दुष्ट स्त्री ! कलंकिनी ! झूठी और गद्दार ! तुझे धिक्कार है।" ऐसा कहते हुए लोग जूते-चप्पल, लाठी, पत्थर आदि लेकर उसे मारने दौड़े। लोग उस पर थूकने लगे और वह डर कर वहाँ से जितनी शक्ति हो सकती थी, उससे भागी। थोड़ी दूर दौड़ी ही थी कि धरती फट गई और वह उसमें समा गई।

गाथा: न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति, बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो, तेनेव सो होति सुखी परत्थ ।।177।।

अर्थ: कंजूस लोग देवलोक नहीं जा सकते क्योंकि ऐसे मूर्ख दान जैसे शुभ कर्मों (से दाने से जलते हैं और उनकी) की प्रशंसा नहीं करते। इसके विपरीत सद्पुरुष दान का अनुमोदन कर शुभ कर्म का अर्जन करते हैं और देवलोक जाकर सुख की अनुभूति करते हैं।

सद्कर्म कर आनन्द की प्राप्ति
असदृश दान की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा पसेनदि ने एक भव्य आयोजन कर बुद्ध और उनके भिक्षु संघ को भोजन दान दिया। प्रतिस्पर्द्धा में नागरिकों ने उससे भी बढ़कर भोजन-दान का प्रबंध किया। इस प्रकार राजा और प्रजा प्रतिस्पर्द्धा में आकर एक दूसरे से बढ़कर कार्यक्रम का आयोजन करने लगे। अंततः राजा की जीत सुनिश्चित करने के लिए महारानी मल्लिका ने एक योजना बनाई। उसने एक बहुत ही सुन्दर विशाल मंडप बनवाया, पाँच सौ श्वेत छत्र एवं पाँच सौ प्रशिक्षित हाथी मँगाये । ये पाँच सौ हाथी इन पाँच सौ श्वेत छत्रों को पकड़कर पाँच सौ भिक्षुओं के पीछे खड़े थे। मंडप के बीच में दस नौकाएं रखी गईं जिनमें गंधलेप एवं इत्र रखा गया। बालायें उनमें से गंध लेप एवं इत्र भिक्षुओं के ऊपर छींटती रहीं। दो-दो भिक्षुओं के बीच एक राजकुमारी खड़ी होकर भिक्षुओं को पंखा झलने लगीं। बाद में नागरिकों ने जब भोजन-दान का आयोजन किया तो उनके पास न तो श्वेत छत्र थे, न प्रशिक्षित हाथी और न राजकुमारियाँ। उन्होंने मन ही मन अपनी हार मान ली। इस तरह भव्य भोजन-दान समारोह का आयोजन किया गया। राजा ने इस आयोजन पर कुल चौदह करोड़ मुद्रा खर्च किये।

इस समारोह के आयोजन के समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। दोनों के मन में इस आयोजन के प्रति विभिन्न प्रकार के विचार उठे। जुण्ह अमात्य राजा का दान देखकर अति प्रसन्न हुआ और बुद्ध और भिक्षु संघ को दिए गए भोजन-दान की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा, उसने यह भी सोचा कि ऐसा महादान तो एक राजा ही कर सकता है। उसे इस बात की भी अति प्रसन्नता थी कि राजा द्वारा अर्जित पुण्य का अंश भी सबों को कुछ न कुछ अवश्य ही मिलेगा। इसके विपरीत दूसरा अमात्य, काल, सोचने लगा कि राजा ने एक ही दिन में चौदह करोड़ मुद्राएं उड़ा दीं; भिक्षुगण भोजनोपरान्त विहार को चले जायेंगे और सो जायेंगे। इस प्रकार उस दान-कर्म की आवश्यकता नहीं थी। भोजनोपरान्त बुद्ध ने अंतर्दृष्टि से देखा कि अमात्य काल की सोच क्या थी। उन्हें धर्म-अनुमोदन करना था। अतः उन्होंने सोचा कि अगर वे ज्यादा देर तक धर्म-प्रविचय करेंगे तो काल के अन्दर का असंतोष और उद्विग्नता और बढ़ेगी जिससे उसका नुकसान होगा। अगले जन्म में उसे और अधिक कष्ट उठाना होगा। अतः शास्ता ने संक्षेप में ही राजा के दान का अनुमोदन किया और विहार चले गए।

उधर राजा पसेनदि दुखी हो गए कि क्या उनसे कोई त्रुटि हो गई कि बुद्ध ने संक्षेप में ही धर्म-गाथा कही। अतः विहार जाकर उसने बुद्ध से यह प्रश्न कर डाला। तथागत ने उसे समझाया, "राजन ! तुम्हारा दान अति श्रेष्ठ था। ऐसा दान बुद्धों को जीवन में एक ही बार मिला करता है।" "तब आपने संक्षेप में भक्तों को अनुमोदन क्यों किया ?"

तब शास्ता ने महामात्य काल के मन की स्थिति के विषय में बताया कि किस प्रकार उसके मन में विचार उठा था कि राजा ने धन का अपव्यय किया था, अतः वह दुखी था। " अगर मैंने लंबा अनुमोदन किया होता तो उसका असंतोष और भी बढ़ता और इस कारण इस जन्म में और अगले जन्म में भी उसे अधिक कष्ट उठाना पड़ता। अतः उस पर अनुकंपा कर मैंने संक्षिप्त व्याख्यान देना ही उचित समझा।" उन्होंने यह भी कहा, " राजन ! मूर्ख लोग दूसरों के द्वारा दिये गए दान में भी आनन्द की अनुभूति नहीं करते; वे स्वयं तो दान नहीं देते हैं, दानी से जलते हैं, ईर्ष्या करते हैं और इस प्रकार निम्न लोकों को जाते हैं। समझदार लोग दूसरों द्वारा दिये गये दान में भी आनन्द प्राप्त करते हैं और उस दान की प्रशंसा कर अपने लिए शुभ कर्म अर्जित करते हैं और उच्च देव लोकों को जाते हैं।"

राजा ने काल अमात्य को बुलाकर कहा, "मैंने जो कुछ दान किया वह स्वयं एवं बाल-बच्चों के साथ मिलकर अर्जित किया था। इससे तुम्हें क्या कष्ट हो रहा था जो तुम इस प्रकार की बात सोचने लगे ? मेरे राज्य से निकल जाओ।" दूसरी ओर राजा ने अमात्य जुण्ह को बुलाकर उसे सात दिनों तक राज्य सौंपकर उसी प्रकार सात दिनों तक मुक्तहस्त दान करने का निर्देश दिया।

गाथा: पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं ।।178।।

अर्थ: समस्त पृथ्वी के राज्य, स्वर्ग के दिव्य सम्पत्ति और सभी लोगों के स्वामित्व से भी बढ़कर है- स्त्रोत आपत्ति का फल।

धर्म पथ पर आगमन : सबसे महान कार्य
अनाथपिंडिक पुत्र, काल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाउपासक अनाथपिंडिक को काल नाम का एक पुत्र था। वह इतने महान श्रद्धावान पिता का पुत्र होकर भी कभी धर्म-श्रवण के लिए नहीं जाता था। बुद्ध भी जब अपने शिष्यों के साथ पधारते तो उनके सम्मुख प्रकट नहीं होता। ऐसा देखकर अनाथपिंडिक ने चिंतित होकर सोचा कि अगर यही सिलसिला रहा तो वह अगले जन्म में निम्न लोकों को प्राप्त होगा। अतः अपने पुत्र को धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए एक तरकीब सोची। पुत्र से कहा, "आज अगर तुम उपोसथ व्रत रख, विहार जाकर धर्म श्रवण कर आओ तो मैं तुम्हें सौ कार्षापण दूँगा।" धन के लालच में उपोसथ-व्रत रख वह विहार गया पर वहाँ उसने धर्म श्रवण नहीं किया। वहाँ जाकर वह सो गया और प्रातः होने पर उठकर घर वापस आ गया। घर लौटने पर उसे जलपान दिया गया पर पहले उसने सौ कार्षापण ले लिए तभी भोजन किया।

दूसरे दिन पिता ने पुत्र से कहा, "अगर तुम विहार जाकर बुद्ध की एक गाथा कंठस्थ कर आओ तो मैं तुम्हें हजार कार्षापण दूँगा।" कार्षापण के लालच में पुत्र पुनः विहार गया और इस बार बुद्ध से आग्रह किया कि वह कुछ सीखना चाहता था। अतः बुद्ध ने उसे एक छोटा सा पद दे दिया तथा उसे कंठस्थ कर लेने के लिए कहा पर उसकी मनः स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह उसे याद कर पाता। अतः वह उस गाथा का बार-बार उच्चारण करने लगा पर याद नहीं कर पाया। लेकिन गाथा का बार- बार उच्चारण करने से उसे उसका अर्थ स्पष्ट होने लगा और उसके ज्ञान चक्षु खुलने लगे। पूरी तरह अर्थ समझकर वह स्रोतापन्न हो गया।

दूसरे दिन बुद्ध और भिक्षुगण अनाथपिंडिक के घर गए। उनके साथ काल भी गया, लेकिन आज वह मन ही मन चाह रहा था, "अगर मेरे पिता बुद्ध के सामने एक हजार कार्षापण न दें तो बड़ा अच्छा हो। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने उपोसथ व्रत पैसे के लिए रखा था।" वहाँ पहुँचने पर उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को भोजन-दान दिया। काल को भी भोजन मिला। उसने भी भोजन किया। उसके बाद उसके पिता एक हजार कार्षापण ले आए और काल को देने की चेष्टा की पर उसने पैसे लेने से मना कर दिया। उसके पिता ने उसे दोबारा पैसे लेने के लिए कहा पर उसने फिर अस्वीकृति दे दी।

तब अनाथपिंडिक ने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! मैं अपने पुत्र के व्यवहार को देखकर प्रसन्न हूँ।" "ऐसा कैसे ?" "परसों मैंने उसे विहार भेजा था कि अगर उपोसथ व्रत रखोगे तो मैं तुम्हें एक सौ कार्षापण दूँगा। कल वह भोजन करने को तैयार नहीं था क्योंकि मैंने उसे पैसे नहीं दिए थे लेकिन आज जब मैं उसे पैसे लेने के लिए जिद कर रहा हूँ तो वह अपनी अस्वीकृति दे रहा है।" तब बुद्ध ने समझाया, "अनाथपिंडिक ! सच यह है कि आज तुम्हारे पुत्र ने स्रोतापन्न प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे पुत्र ने जो प्राप्त कर लिया है वह महाचक्रवर्ती के साम्राज्य तथा देवलोक और ब्रह्मलोक की सम्पत्तियों से भी बढ़कर है।"

DHAMMAPADA
LOKA VAGGA

बुद्ध कौन?
धम्मपद
बुद्ध वर्ग
गाथा और कथा
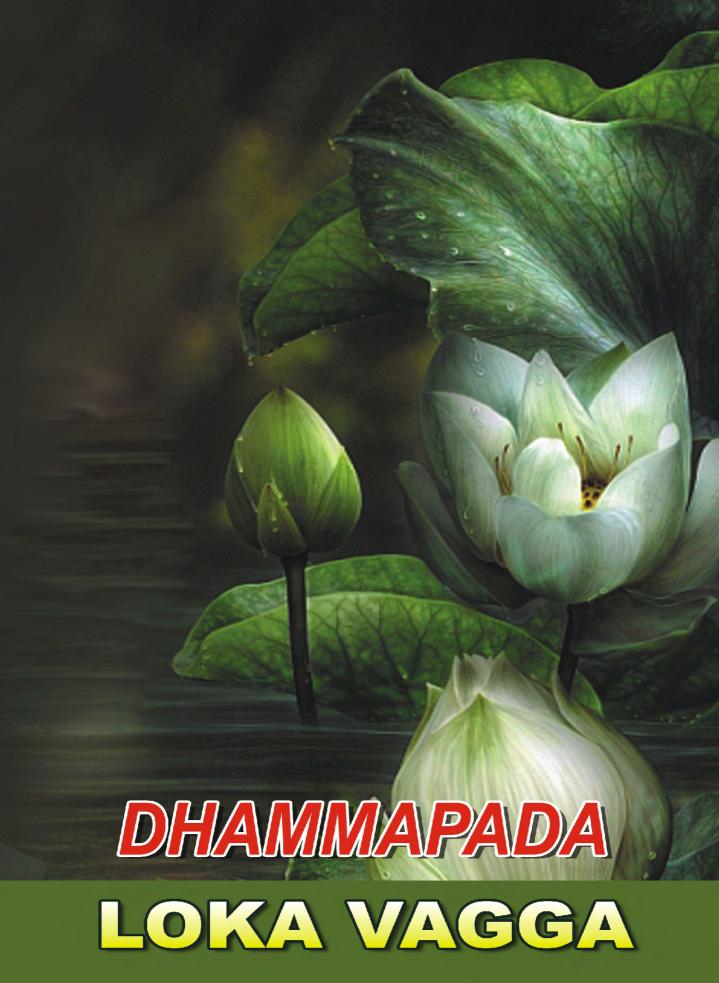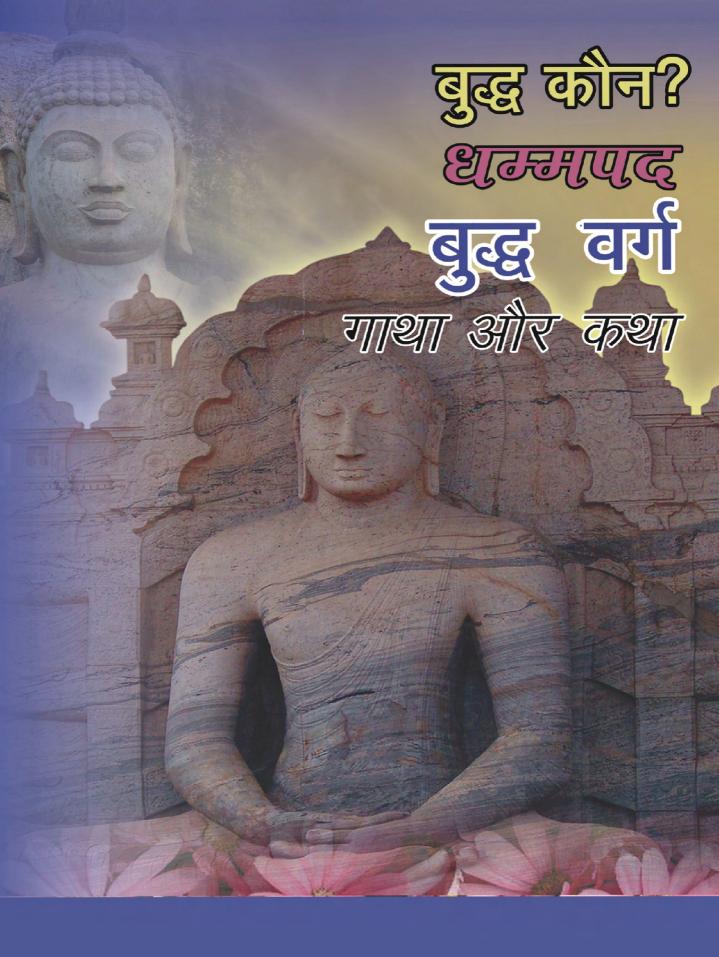
बुद्ध कौन?
धम्मपद
बुद्ध वर्ग
गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

बुद्ध वर्ग

गाथा: यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ।।179।।

अर्थ: जिसका एक बार जीता हुआ रागादि क्लेश पुनः लौट नहीं सकता, संसार में वह जिस स्तर का विजयी है वहाँ और कोई पहुँच ही नहीं सकता, तो फिर उस अंत तथा आधार रहित बुद्ध को किस प्रकार डिगा सकोगी ?

मारः गया तू बुद्ध से हार
मार कन्याओं की कथा

स्थान : बोधिमण्डल

कुरू देश में मागन्दिय नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी एक पुत्री थी, उसका नाम भी मागन्दिय था। वह अति सुन्दर थी। बहुत दूर-दूर से उसके विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आए पर हर प्रस्ताव पर ब्राह्मण यही कहता कि वह वर कन्या के योग्य नहीं है।

एक दिन प्रातः काल जब बुद्ध ने अन्तर्दृष्टि से जगत का सर्वेक्षण किया तो मागन्दिय को अपने क्षेत्र में पाया। ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातः नगर से बाहर अग्नि को आहुति दिया करता था। अतः बुद्ध सुबह-सुबह अपना भिक्षा-पात्र लेकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ किया करता था। ब्राह्मण ने बुद्ध के भव्य रूप को देखा तो सोचा, "इस युवक के समान संसार में कोई दूसरा प्रतीत नहीं होता है; मैं अपनी बेटी का हाथ इसे ही दूँगा।" अतः उसने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! मेरी एक पुत्री है, अभी तक उसके योग्य वर ढूँढ़ने में असफल रहा हूँ। मैंने उसका हाथ अभी तक किसी को नहीं सौपा है। पर तुम उसके योग्य हो। मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ; मैं अपनी बेटी को लेकर आता हूँ, तुम यहीं प्रतीक्षा करो। " शास्ता ने उसकी बातें सुनीं लेकिन उन्होंने न तो अपनी स्वीकृति दी और न ही अस्वीकृति।

ब्राह्मण घर गया और अपनी पुत्री को सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित कर, अपनी पत्नी के साथ वहाँ वापस आ गया जहाँ उसकी भेंट बुद्ध से हुई थी। बुद्ध उसी स्थान पर रुके रहने के बजाय, आगे जाकर एक जगह रुक गए थे। जहाँ वे ब्राह्मण से मिले थे, वहाँ धरती पर अपने पदचिन्ह छोड़ गए थे।

ब्राह्मण की पत्नी ने पूछा, "युवक कहाँ है ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैंने उससे कहा था, तुम यहीं रुको।" इधर-उधर देखते हुए ब्राह्मण ने शास्ता के चरण-चिन्ह देखे और पत्नी को दिखाया, "यह देखो, उसके पद-चिन्ह।" ब्राह्मण की पत्नी चरण-चिन्हों को पहचानने की कला जानती थी। उसने पति से कहा, "अरे ! यह किसी काम भोगी का पद-चिन्ह नहीं है।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "तुम्हें सदा 'मटकी में मगर' दिखाई देता है। जब मैंने उस भिक्षु से कहा, 'मैं अपनी बेटी का हाथ तुम्हें दूँगा,' तो उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ब्राह्मणी ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम्हें जो कहना है वह कहो पर मैं इतना ही कह सकती हूँ कि ये पद-चिन्ह किसी जीवन-मुक्त के हैं।" ब्राह्मण ने पत्नी से कहा, "इस विषय पर वाद-विवाद मत करो; चुपचाप मेरे पीछे चली आओ।" थोड़ी दूर जाने पर उसने तथागत को देखा और उनकी ओर इशारा करते हुए पत्नी को बताया, " वह रहा आदमी !" बुद्ध के समीप जाते हुए ब्राह्मण ने कहा, " भन्ते ! मैं अपनी बेटी आपको पत्नी के रूप में देना चाहता हूँ।" बुद्ध ने यह कहने के बजाय कि, 'मुझे तुम्हारी पुत्री की आवश्यकता नहीं' कहा, "ब्राह्मण ! मुझे तुमसे कुछ कहना है, ध्यान से सुनो।" ब्राह्मण ने कहा, " सुनाओ, मैं सुनूँगा।" तब बुद्ध ने ब्राह्मण को अपने पहले के जीवन की कथा सुनाई।

गाथाः यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ।।180।।

अर्थः जिसे भवजाल में फँसाने वाली तृष्णा जरा भी प्रभावित नहीं कर पाती है, उस अंत तथा आधार रहित बुद्ध को किस प्रकार डिगा सकोगी ?

बुद्ध को कोई हरा नहीं सकता
मार कन्याओं की कथा

महाभिनिष्क्रमण से प्रारम्भ किया। बुद्ध अपना पूर्ण राज-पाट त्याग कर अश्व कंथक पर बैठ, सारथी चन्ना के साथ राजमहल से निकल पड़े। मार नगर द्वार के पास खड़ा था। जैसे ही वे नगर-द्वार पहुँचे, मार ने उनसे कहा,"सिद्धार्थ ! तुम अपने राजमहल में लौट जाओ; सात दिनों के अंदर ही तुम सारे संसार के महाराजाधिराज हो जाओगे।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "मार, मुझे भी मालूम है, लेकिन मुझे कुछ नहीं चाहिए।" "तब तुम किस उद्देश्य से यह महान त्याग कर रहे हो ?" "ताकि मैं सत्य का अन्वेषण कर सकूँ।" " ठीक है, अगर आज से तुमने रागमय या गलत सोचा तो मैं तुम्हें ठीक सबक सिखाऊँगा।"

उसी समय से मार उनके पीछे छः वर्षों तक लगा रहा कि उसे कोई तो अवसर प्राप्त हो जाए कि बुद्ध की कमजोरी खोज सके। बुद्ध ने छः वर्षों तक साधना की और फिर अपने सतत प्रयत्न से बोधि वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त किया। उस समय मार वहीं पास में दुखपूर्वक सोच रहा था, "इतने दिनों से मैं इनके पीछे अवसर की तलाश में पड़ा रहा पर इनके अंदर की कोई कमजोरी नहीं निकाल सका और अब ये मेरी पहुँच से परे जा चुके हैं।"

उसे उदास देखकर मार की तीनों पुत्रियों रति, तन्हा तथा राग ने उसकी उदासी का कारण पूछा। मार ने अपनी उदासी का कारण बताया। तब उन्होंने अपने पिता से कहा, "पिताश्री ! आप दुखी न हों, हम लोग उसको अपने वश में कर लेंगे और तुरंत उसे लेकर आते हैं" बुद्ध के निकट पहुँचकर उन्होंने कहा, "हम आपकी नम्र दासी बनी रहेंगी।" बुद्ध ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, उन्होंने तो अपनी आँख खोलकर भी उनको नहीं देखा। तब मार की पुत्रियों ने पुनः सोचा, "लोगों की पसंद भिन्न होती है। किसी को नवयुवती, किसी को औरत, किसी को प्रौढ़ औरत और किसी को थोड़ी अधिक उम्र की औरत पसंद होती हैं। हम उसे विभिन्न रूपों से आकर्षित करेंगी।" अतः उन्होंने एक के बाद एक विभिन्न उम्र और रूप की स्त्री का स्वरूप लिया और बुद्ध को रिझाते हुए कहा, "हम सभी आपकी नम्र दासी बनी रहेंगी।"

बुद्ध ने कहा, "दूर हो जाओ, तुम यहाँ क्या देख रही हो जो इतनी अधिक प्रयत्नशील हो ? तुम्हें अपना प्रभाव उनके ऊपर दिखाना चाहिए जिन्होंने अपने आप को राग और अन्य द्वेषों से मुक्त नहीं किया है। मैंने अपने आप को राग एवं अन्य दुर्गुणों से मुक्त कर लिया है। तुम मुझे अपने नियंत्रण में लाने के लिए क्यों चेष्टा कर रही हो ?" जब बुद्ध ने अपने विषय में मागन्दिय को बता कर कहा, "मागन्दिय, जब मैंने बहुत पहले मार की इन तीन पुत्रियों को देखा, जिनका शरीर स्वर्णिम था और जो अति सुन्दर थीं, तब भी मेरे अन्दर कोई रागाग्नि पैदा नहीं हुई थी। उनकी तुलना में तुम्हारी पुत्री का शरीर, एक मैला के पात्र जैसा है जिसे बाहर से रंग दिया गया हो।"

तब बुद्ध ने ये दो गाथाएं कहीं
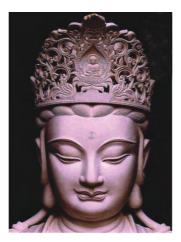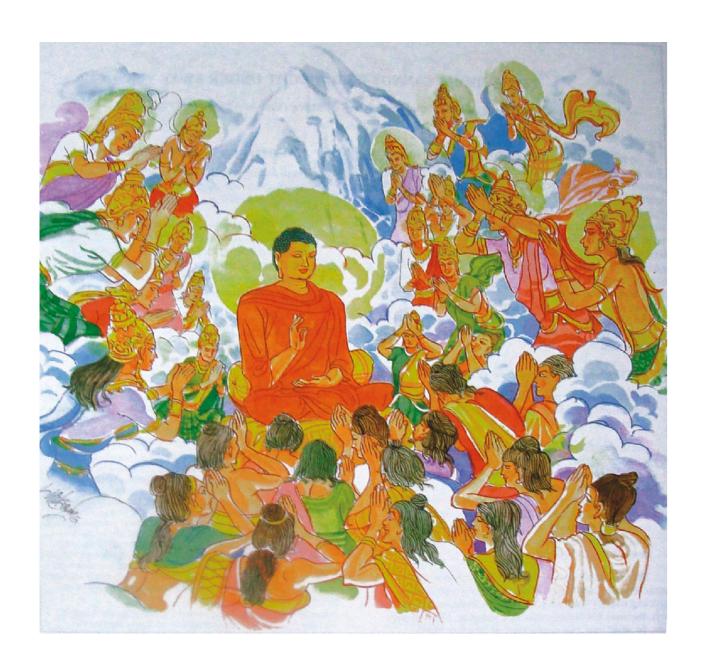
गाथा: ये झानपसुता धीरा नेक्कम्मूपसमे रता ।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ।।181।।

अर्थ: जो धैर्यपूर्वक ध्यान में लगा है, निर्वाण प्राप्ति के लिए रत है, उन स्मृतिवान बुद्धों की प्रशंसा देवतागण भी करते हैं।

बुद्ध देवतागण को भी प्रिय हैं
बुद्ध के तावतिंस दिव्य लोक से लौटने की कथा

स्थान: संकस्सनगर, राजगृह

एक बार अन्य मतों के गुरुओं की चुनौती के कारण बुद्ध ने श्रावस्ती में कुछ चमत्कार दिखाए। इसके बाद बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक चले गए। उनकी माता, जिन्होंने तुसित लोक में संतुसित देव के रूप में जन्म लिया था, वे भी तावतिंस दिव्य लोक पधारीं। बुद्ध ने वर्षावास के पूरे तीन मास की अवधि में देवताओं को धर्म-प्रवचन दिया जिससे संतुसित देव (पूर्व जन्म की माता) ने स्रोतापन्न फल प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक चले गए तो लोगों ने मोग्लान से पूछा, "बुद्ध कहाँ गये हैं?" यद्यपि मोग्लान खूब अच्छी तरह जानते थे कि बुद्ध कहाँ गए हैं फिर भी उन्होंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया। बाद में भन्ते अनिरुद्ध ने लोगों को बताया कि वे अपनी माता को धर्म देशना देने गए थे।

जब बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक में वर्षावास कर रहे थे तब भन्ते सारिपुत्त संकिस नगर में वास कर रहे थे और तीन महीनों तक धर्म-प्रवचन किया। वर्षावास काल की समाप्ति होने वाली थी, मोग्लान शास्ता से मिलने तावतिंस दिव्य लोक गए। वहां बुद्ध ने उन्हें बताया कि वर्षाकाल समाप्त होने पर वे आषाढ़-पूर्णिमा के दिन धरती पर पधारेंगे। उक्त तिथि पर तथागत ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के साथ संकिसा नगरी में उतरे। उस समय देवताओं और मनुष्यों का अपार समूह उनके स्वागत के लिए टूट पड़ा। शाक्यमुनि की छवि अवर्णनीय थी। सारिपुत्त यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गए और शास्ता की वंदना करते हुए कहा, "वास्तव में आप पूजनीय हैं। मैंने कभी भी ऐसी शोभा न देखी थी और न सुनी थी। सभी देवता और मनुष्य आपको हृदय से चाहते हैं।"

शास्ता ने समझाया, "गुणवान बुद्ध, देवता तथा मनुष्य-दोनों को प्रिय होते हैं। जो ध्यानी हैं, धैर्यवान हैं, निर्वाण कार्य में रत हैं, उन सम्बुद्धों की चाह देवताओं को भी रहती है।"
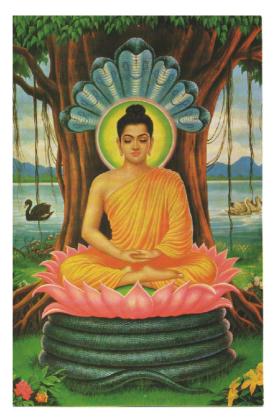
गाथा: किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ।।182।।

अर्थ: मानव जन्म पाना कठिन है, मानव जीवन जीना कठिन है, सद्धर्म श्रवण का अवसर मिलना कठिन है और बुद्धों की उत्पत्ति कठिन है।

धर्म पथ पर चल मनुष्य जन्म का लाभ उठायें
नागराज एरकपत्त की कथा

स्थान:वाराणसी

एरकपत्त नाम का एक नागराज था। उसकी एक सुन्दर कन्या थी जिसके विवाह के लिए वह उपयुक्त वर ढूँढ़ना चाहता था। अत: उसने शर्त रखी कि जो कोई स्वयंवर में उसके पूछे प्रश्नों का उत्तर दे देगा, वह अपनी बेटी का ब्याह उससे कर देगा। इस विधि द्वारा वह बुद्ध को भी ढूँढ़ निकालना चाहता था। नागराज पूर्व जन्म में एक भिक्षु था पर उसने कुछ गलती कर दी थी,अत: उसे भवचक्र में बार-बार निम्न योनि में जन्म लेना पड़ा।

एक दिन शास्ता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि उत्तर माणवक नाम का एक युवक स्वयंवर में भाग लेने जा रहा है और उसमें स्रोतापन्न होने की संभावना है। अत: शास्ता उसके मार्ग में खड़े हो गये और उसे समझाया कि युवती के प्रश्नों का उत्तर कैसे देना चाहिए। साथ ही धर्म-प्रवचय भी हुआ। अब वह स्रोतापन्न हो गया। अत: उसे उस युवती को पाने की चाह नहीं रही। फिर भी सबों के कल्याण हेतु वह उधर चल पड़ा।

स्वयंवर में युवती ने प्रश्न किये: (1) राजा कौन है ? (2) क्या जो क्लेशों से मुक्त हो गया है उसे राजा कह सकते हैं ? (3) क्लेशों से मुक्त होने की विधि क्या है ? और (4) मूर्ख कौन है ?

युवक ने इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए: (1) जो अपने छ: इन्द्रियों को वश में रखता है वही राजा है (2) जो क्लेशपूर्ण जीवन जी रहा है वह राजा नहीं है। जो क्लेशों से मुक्त है वही राजा है (3) तृष्णा से मुक्त होकर क्लेशों से मुक्त हुआ जा सकता है तथा (4) जो सांसारिक काम वासनाओं के पीछे दौड़ता है वह मूर्ख है। इसके बाद युवती ने संगीत के माध्यम से इन्द्रियों की बाढ़ रूपी इच्छाओं, जन्म-मरण के चक्कर, अज्ञान के कारण आदि के विषय में पूछा और उनसे मुक्ति के मार्ग को जानना चाहा। उत्तर ने इन सभी प्रश्नों का जवाब वैसा ही दिया जैसा बुद्ध ने सिखाया था। जब एरकपत्त ने ये उत्तर सुने तो वह सुनिश्चित हो गया कि बुद्ध का अवतरण हो गया है। अत: उसने उत्तर से आग्रह किया कि वह उसे बुद्ध के पास ले चले।

बुद्ध वाराणसी में एक बागीचे में विहार कर रहे थे। एरकपत्त शाक्य मुनि को सादर प्रणाम कर रोने लगा। बुद्ध ने पूछा, "राजन, क्यों रो रहे हो ?"

एरकपत्त बोला, "मैं बीस हजार वर्षों से श्रमण-धर्म का पालन कर रहा हूँ पर वह मेरा कल्याण नहीं कर सका और न आप सदृश बुद्ध का दर्शन करा पाया।"

तब बुद्ध ने उसे समझाया, "मानव जीवन मिलना कठिन है। वैसे ही सद्धर्म के श्रवण का अवसर मिलना कठिन है, बुद्धों की उत्पत्ति दुर्लभ है, बुद्ध का उत्पन्न होना कठिन प्रक्रिया है। मानव जन्म जीना भी कठिन है।"

गाथा: सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
संचित्तपरियोदपनं एवं बुद्धान सासनं।।183।।

अर्थ: सभी पापों को न करना, पुण्य कर उनका संचयन करना और अपने चित्त की शुद्धि - यही सब बुद्धों की शिक्षा है।

क्या बुद्धों की शिक्षा एक है ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

स्थान: जेतवन

बुद्ध ने ये तीन गाथायें जेतवन में आनन्द स्थविर के सम्बन्ध में कहीं, जिन्होंने पूर्वकाल के बुद्धों की मूलभूत शिक्षाओं के विषय में उठायी थी ।

कथा के अनुसार एक दिन आनन्द स्थविर दिवासाधना के समय चिंतन करने लगे : बुद्ध ने पूर्व के सात बुद्धों के माता-पिता का नाम, उनकी आयु, जिस वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई, यह सब बता दिया..........

गाथा: खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती न समणो होति परं विहेठयन्तो।।184।।

अर्थ: क्षमा, जिसे सहनशीलता भी कहते हैं, उत्तम तप है। सभी बुद्ध निर्वाण को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। जो व्यक्ति दूसरों को चोट पहुँचाता है या सताता है उसे श्रमण नहीं कहा जा सकता।

संत कैसे रहते हैं ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

.... साथ ही उनके प्रमुख शिष्यों और दानकर्त्ताओं, श्रावकों के सम्मेलन, अग्रश्रावकों के सम्मेलन आदि के विषय में तो बता दिया पर उन्होंने उपोसथ के विषय में कुछ नहीं बताया कि यह एक दिन के उपवास की विधि हर बुद्ध के समय एक जैसी ही थी अथवा भिन्न थी।" अत: वे शास्ता के पास गये और उनसे यही प्रश्न किया।

तथागत ने आनन्द को समझाया, "ये सभी बुद्ध भिन्न-भिन्न समय पर हुए। उनकी सारी चीजें एक समान थीं। उपोसथ करने की विधि भी एक समान थी पर सिर्फ उपोसथ करने की बारंबारता में भी भिन्नता थी। विपश्यी सम्यकसम्बुद्ध सात वर्षों में एक बार उपोसथ कराते थे।

गाथा: अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तं च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं।185।।

अर्थ: किसी का अपमान नहीं करना, किसी को चोट नहीं पहुँचाना, शील की सुरक्षा, भोजन के सही मात्रा का ज्ञान, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना - यही बुद्ध की शिक्षा है।

मार्ग पर कैसे चलें ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

लेकिन उनकी एक दिन की शिक्षा का असर बाकी सात वर्षों तक रहता था। उन्हें फिर सात वर्षों तक दोबारा उपोसथ कराने की जरूरत नहीं पड़ती थी। शिखी और विश्वभू छः वर्षों में एक बार उपोसथ कराते थे। ककुच्छन्द और कोणागम बुद्ध प्रत्येक वर्ष उपोसथ करवाते थे और काश्यप दशबल अर्द्धवार्षिकी अवधि पर उपोसथ करवाते थे। एक दिन का दिया गया वह प्रवचन छः मास तक प्रभावकारी रहता था। इस प्रकार सभी बुद्धों में काल मात्र भेद था पर उन सबकी उपदेश गाथा एक जैसी ही थी।

सभी बुद्धों की शिक्षा को समझाते हुए बुद्ध ने ये तीनों गाथाएं कहीं ।

गाथाः न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो।। 186।।

अर्थः कार्षापण लगातार कितनी भी अवधि तक बरसते रहें, उनसे कामभोगों में तृप्ति नहीं हो पाती क्योंकि काम वासनाएं अल्प स्वाद वाली और अधिकांशतः दुःखदायी ही होती हैं। बुद्धिमान लोग इस सत्य को जानते हैं।

तृष्णा से खारे जल की तरह प्यास कभी नहीं बुझती

असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा

स्थानः जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा बुद्ध ने जेतवन, श्रावस्ती में एक असन्तुष्ट युवा भिक्षु के संदर्भ में कही थी।

कथा है कि यह भिक्षु संघ में प्रव्रजित हुआ तथा उपसम्पदा प्राप्त की। तब उसके उपाध्याय ने उससे कहा, "अमुक स्थान पर जाओ और धर्म पाठ याद करो।" इधर भिक्षु वहाँ गया,उधर उसके पिता ने खाट पकड़ ली। उसका पिता मृत्यु शय्या पर था और बहुत चाहता था कि बेटे से उसकी भेंट हो जाये, पर उसे ऐसा कोई नहीं मिला जिसे भेजकर अपने पुत्र को बुला लेता। जब उसकी मृत्यु का समय निकट आ गया तो वह अपने पुत्र को याद कर पुत्र प्रेम में विलाप करने लगा। अन्त में उसने सौ कार्षापण अलग निकाल कर अपने छोटे पुत्र को दे दिये और कहा, " इस पैसे से मेरे पुत्र के लिए भोजन-पात्र तथा चीवर खरीद देना।" ऐसा कहकर वह मर गया।

कुछ समय बाद युवा भिक्षु घर लौटा तो उसका छोटा भाई उसके चरणों पर गिर पड़ा और जमीन पर रोते-तड़पते हुए कहा, "भन्ते ! पिताजी आपको बहुत याद कर रहे थे और याद करते हुए, विलाप करते हुए, स्वर्ग सिधार गए। लेकिन आँखें बंद करने से पूर्व उन्होंने आपके लिए ये सौ कार्षापण दिये हैं। कृपया यह बतायें कि "मैं इनका क्या करूं।" युवा भिक्षु ने पैसे लेने से इंकार करते हुए कहा, "मुझे इन पैसों की आवश्यकता नहीं है।" लेकिन कुछ समय बाद उसने सोचा, "ऐसे जीवन का क्या जीना जिसमें घर-घर जाकर भिक्षाटन करना पड़ता है ? ये सौ कार्षापण मुझे जीवित रखने के लिए काफी हैं; अतः मैं विहार त्याग कर गृहस्थ का जीवन अपना लेता हूँ।"

यह सोचकर वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति अनुत्सुक हो गया। स्वाध्याय और साधना क्रम सब कुछ छोड़ चिंता से ग्रस्त हो पीला पड़ गया मानों पीलिया रोग से पीड़ित हो। तब उसके साथ के भिक्षुओं ने उससे पूछा, "क्या बात है ?" उसने उत्तर दिया, "भिक्षुभाव से मेरा दिल उचट गया है। मेरी संघ से रुचि उठ गई है।" ऐसा सुनकर उन भिक्षुओं ने यह बात उसके उपाध्याय को और फिर उसके आचार्य को बताई। आचार्य उसे शास्ता के पास ले गए।

गाथा: अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासंबुद्धसावको।।187।।

अर्थ : यह जानकर, बुद्धिमान व्यक्ति देवलोक के कामभोगों में भी अनुरागी नहीं होता है। सम्यकसम्बुद्ध का शिष्य तो सदैव तृष्णा के विनाश में ही लगा रहता है।

निर्वाण : सर्वोच्च सुख
असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा

बुद्ध ने उससे पूछा, "क्या यह कथन सही है कि तुम अनुत्सुक हो गए हो।" "हाँ, भन्ते", उसने जवाब दिया। बुद्ध ने फिर पूछा, "तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? क्या तुम स्वावलम्बन से जीवन जीने की स्थिति में हो ? क्या तुम्हारे पास जीविका का कोई साधन है?" "हाँ, भन्ते !", "कितना धन तुम्हारे पास है ?" "भन्ते, मेरे पास सौ स्वर्ण मुद्राएं हैं।" तब शास्ता ने कहा,"कुछ कंकड़ ले आओ ताकि जोड़कर देख लें कि सौ कार्षापण से तुम्हारा काम चल पायेगा या नहीं ?" वह भिक्षु कंकड़ ले आया। कंकड़ों के माध्यम से तथागत ने गणना प्रारंभ की, "पचास कार्षापण भोजन सामग्रियों के लिए, चौबीस कार्षापण बैलों की जोड़ी खरीदने के लिए, इतना हल, इतना कुदाल, इतना फरसा आदि के लिए।" ऐसा करते-करते कार्षापणों की कमी पड़ गई; सौ कार्षापण से घर चलने की स्थिति में नहीं था।

तब शाक्य-मुनि ने उस तरुण भिक्षु को आगाह किया, "भिक्षु ! ये सौ कार्षापण तुम्हें घर चलाने में कम पड़ेंगे। तुम अपनी इच्छाओं की पूर्ति कैसे कर पाओगे ? तुम अपने एक पूर्व जन्म में राजा थे। तुम्हारे एक आदेश पर तुरत बारह योजन तक रत्नों की वर्षा हो जाती थी। जितने काल तक छत्तीस इन्द्र देवलोक पर राज्य करते हैं, उतने काल तक अकेले तुमने देवलोक पर राज्य किया है; इतने पर भी तुम्हारी तृष्णा तृप्त नहीं हुई और तुम स्वर्ग से गिर गए।" तब बुद्ध ने उसे ये दोनों गाथाएं सुनाई।
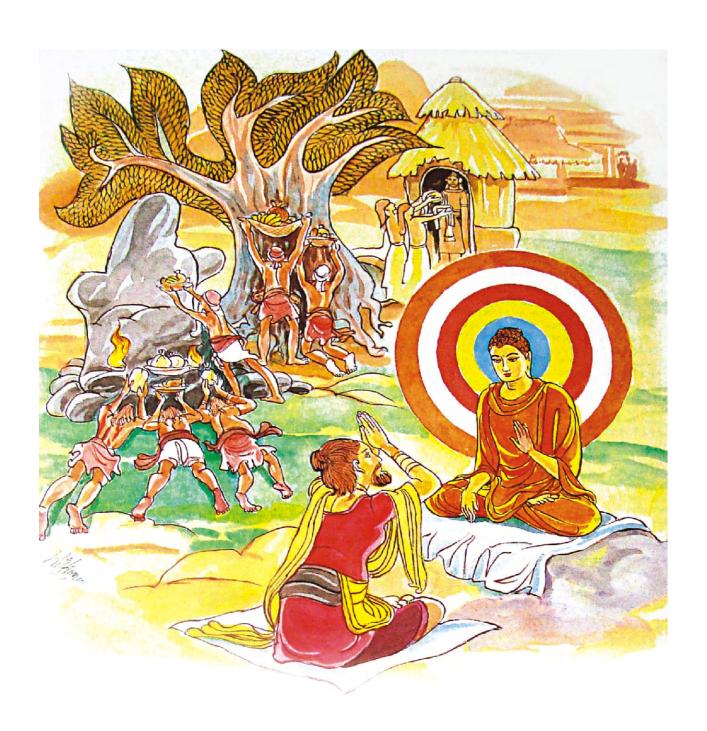
गाथा: बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
अरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।।188।।

अर्थ: मनुष्य भयभीत होने के कारण प्रकृति (पर्वत, जंगल, बागीचा, उद्यान,वृक्ष आदि) की ओर जाते हैं।

भय से मुक्ति का सही उपाय
अग्निदत्त की कथा

स्थान:श्रावस्ती जेतवन

यह धर्मदेशना शास्ता ने बालू की ढेर पर बैठे एक ब्राह्मण, अग्निदत्त के सम्बन्ध में कही जो पहले कोसल राज का पुरोहित था ।

अग्निदत्त महाकोसलराज का पुरोहित था। उसके पिता के देहावसान के बाद राजा पसेनदि ने 'यह मेरे पिता का पुरोहित था' सोचकर अग्निदत्त को प्रतिष्ठा के साथ उसी पद पर रख लिया। जब वह राजा से मिलने आता तो राजा उससे ससम्मान पेश होता तथा उससे इस प्रकार कहता, "पुरोहित जी, कृपया यहाँ आसन ग्रहण करें।" ऐसा कहते हुए राजा उसे बैठने का आसन दिया करता था। राजा के इस व्यवहार को देखकर अग्निदत्त ने एक दिन सोचा, "यह राजा मुझे बहुत आदर देता है। पर राजा लोगों के चित्त का क्या भरोसा ? कब बदल जाए ? दूसरे, समान उम्र के व्यक्ति के साथ राजसुख भोगना उचित होता है। अतः ऐसी परिस्थिति में मेरा प्रव्रजित हो जाना ही उचित है।" अतः उसने राजा से प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। राजा ने उसे अनुमति दे दी और वह प्रव्रजित हो गया। उसके साथ ही उसके अनुयायी भी प्रव्रजित हो गए। वह उनके साथ अंग, मगध और कुरू राष्ट्रों में घूमता तथा उपासकों को उपदेश देता, "शिष्यों ! तुममें से किसी के अन्दर अगर कभी काम-भावना उत्पन्न हो तो उससे मुक्ति हेतु तुम नदी से एक बोरा बालू भरकर ले आओ और उसे यहाँ डाल दो।"
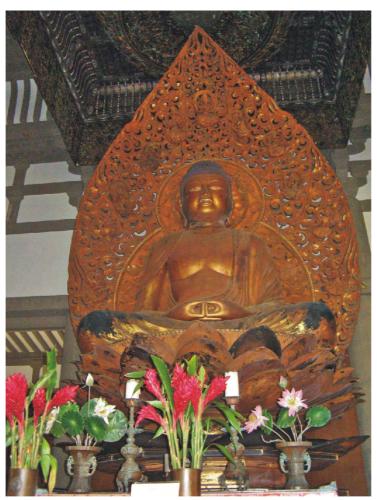
गाथाः नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।189।।

अर्थः परन्तु ये शरण स्थल सुरक्षित और मंगलदायक नहीं हैं, सुखदायक नहीं हैं क्योंकि यहाँ जाने से दुखों से मुक्ति नहीं होती।

अंधविश्वास से कुछ नहीं मिलेगा
अग्निदत्त की कथा

उपासकों ने उसकी बात मान ली और वे एक स्थान पर बालू लाकर डालने लगे। वहाँ एक बहुत बड़ी बालुकाराशि एकत्र हो गई। तब अहिच्छत्र नामक नागराज ने उस बालुकाराशि पर आधिपत्य जमा लिया। विभिन्न स्थानों से आने वाले लोग भी उसे तरह-तरह की दान-राशि देने लगे। अग्निदत्त उन्हें उपदेश देता, "वनों की शरण में जाओ, पर्वतों की शरण में जाओ, उद्यानों की शरण में जाओ, वृक्षों की शरण में जाओ। इस प्रकार तुम सभी दु:खों से मुक्त हो जाओगे।"

उधर सिद्धार्थ, बोधिसत्व, कपिलवस्तु से गृहत्याग के बाद सम्बोधि प्राप्त कर जेतवन, श्रावस्ती में रह रहे थे। एक दिन उन्होंने अन्तर्दृष्टि से देखा कि अग्निदत्त ब्राह्मण एवं उसके शिष्य इतने परिपक्व हो चुके हैं कि वे अर्हत्व प्राप्त कर सकते हैं। अत: सायंकाल में उन्होंने महामोग्लान को बुलाया और उन्हें अग्निदत्त और उसके शिष्यों के विषय में बताया तथा कहा कि तुम अग्निदत्त के यहाँ जाकर उसे सद्मार्ग पर लाओ। आनन्द ने कहा, "भन्ते ! वे अनेक हैं और कहाँ मैं अकेला ? आप भी चलते तो अच्छा था।" "मोग्लान तुम आगे चलो, मैं पीछे से आता हूँ।"
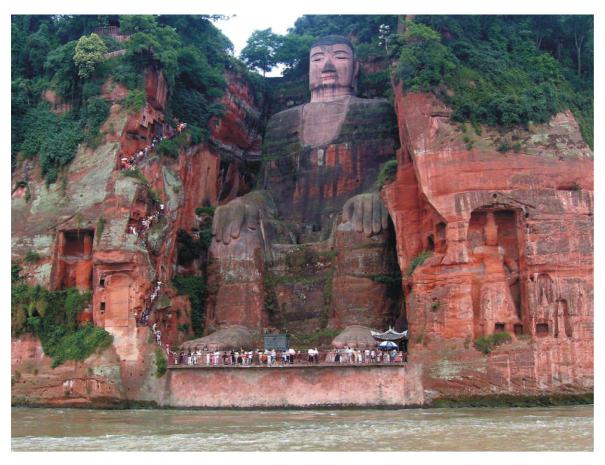
गाथा: यो च बुद्धं च धम्मं च सङ्घं च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चनि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति।।190।।

अर्थ: अगर कोई ज्ञानी पुरुष बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण में जाता है तो वह चारों आर्य सत्य को सम्यक प्रज्ञा से देख लेगा।

बुद्ध की शरण से सत्य देखना
अग्निदत्त की कथा

मोग्लान श्रावस्ती, जेतवन विहार से चले। उन्होंने सोचा, "मैं ठहरा अकेला और उधर अग्निदत्त अपने अनेक शिष्यों के साथ रहता है। अगर मैं जाकर उन्हें सीधा सम्बोधित करता हूँ तो संभव है कि प्रतिक्रिया में वे मुझसे लड़ बैठें।" अत: उन्होंने अपनी शक्ति से वहाँ पर वर्षा की थोड़ी फुहारें छोड़ दीं जहाँ अग्निदत्त अपने शिष्यों के साथ रहता था। "वर्षा आ गई " सोचकर सभी अपनी-अपनी कुटी में घुस गए। तब मोग्लान अग्निदत्त की कुटी के पास पहुँचे और उसे नाम लेकर पुकारा। अपने नाम से बुलाए जाने पर अग्निदत्त को क्रोधपूर्ण आश्चर्य हुआ। उसने घमंड से पूछा, "यह कौन है जो मुझे मेरे नाम से बुलाने की हिम्मत करता है ?" फिर उसने अपना प्रश्न दुहराया, "यह कौन है ?" "मैं एक ब्राह्मण हूँ।" "क्या चाहते हो ?" "मुझे रात्रि विश्राम के लिए जगह चाहिए। कोई सही स्थान बता दो।" "यहाँ ठहरने की कोई जगह नहीं है। हर आदमी अपनी-अपनी कुटी में रहता है।" "ऐसा क्यों कहते हो, अग्निदत्त ? मनुष्य मनुष्य के ही पास जाते हैं, गौएं गौओं के पास जाती हैं। प्रव्रजित प्रव्रजित के पास नहीं जायेगा तो किसके पास जायेगा ? तुम ही बताओ।" "तू प्रव्रजित है क्या ?" "हाँ।" "अगर तू प्रव्रज्या धारण कर चुका है तो तेरी झोली, जल पात्र और अन्य चीजें कहाँ है ?"
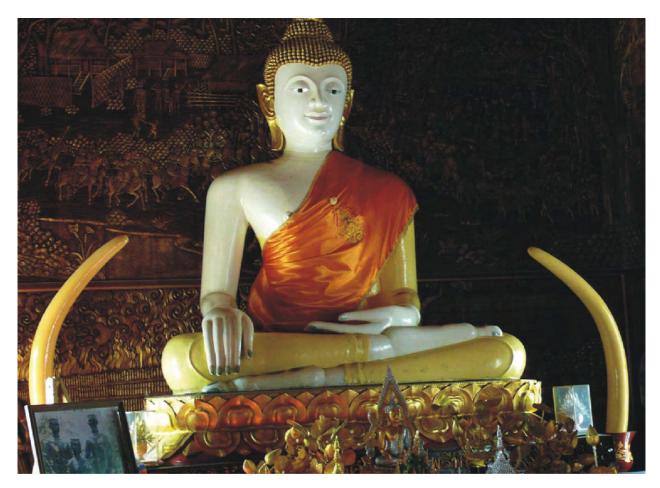
गाथा: दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स अतिक्कमं।।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं।।191।।

अर्थ: चार आर्य सत्य हैं : दुख है, दुख का कारण है, दुखों से मुक्ति संभव है और दुखों से मुक्ति का मार्ग है : अष्टांग मार्ग।

आर्य सत्य क्या है?
अग्निदत्त की कथा

"मेरे पास प्रव्रजित का सारा सामान है पर भारी होने के कारण उन सबों को सदैव अपने साथ लेकर नहीं चलता हूँ। सिर्फ जरूरत के अनुसार लेकर चलता हूँ।" महामोग्लान ने अपना धैर्य नहीं खोते हुए कहा, "अग्निदत्त! मुझ पर क्रोध मत करो। सिर्फ रात गुजारने के लिए कोई जगह बता दो।" "अरे, मैंने कह दिया न ? यहाँ ठहरने की कोई जगह नहीं है।" अंततः मोग्लान ने पूछा, "यहाँ बालू का ढेर पड़ा हुआ है। इस पर कौन रहता है ?" "एक नागराज।" "चलो, मुझे वही जगह बता दो।" "नहीं, मैं नहीं बता सकता। वह तुम्हें बहुत मँहगा पड़ेगा।" "मँहगा पड़े या सस्ता, तुम वह जगह तो दिखा दो।" "मैं कुछ नहीं कर सकता। तुमको जो मन में आये करो। मुझे तुमसे कोई लेना-देना नहीं है।"

जैसी उम्मीद थी, अग्निदत्त ने स्थविर की कोई मदद नहीं की। वह स्वयं ही बालुकाराशि की ओर चल दिए। नागराज ने देखा कि यह भिक्षु तो मेरी ही ओर आ रहा है। "क्यों न इसे मार दिया जाए ?" यह सोचकर उसने विषयुक्त फुफकार छोड़ी। उधर मोग्लान सतर्क थे। एक भिक्षु को सतर्क रहना ही पड़ता है। "यह सोचता है कि फुफकार छोड़कर यही डरा सकता है, मार सकता है। मैं भी इसे समझाता हूँ कि फुफकार क्या चीज होती है ?" इस प्रकार नागराज के फुफकार के जवाब में स्थविर ने उससे अधिक तीव्र फुफकार भरी। दोनों के फुफकार से निकली ज्वाला से नागराज जलने लगा। अग्निदत्त और उसके शिष्यों ने इसे दूर से देखा। रात्रि थी, अतः दूर से स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। उन्हें लगा कि मोग्लान जल रहे हैं। तब उन्होंने आपस में कहा, "देखो इस मूर्ख श्रमण को! हमारी बात मान ली होती तो वह आज इस तरह जलकर खत्म नहीं हो जाता।" उधर मोग्लान ने नागराज को हराकर उसका अहंकार चूर-चूर कर दिया। वे निश्चिन्त होकर बालुकाराशि पर लेट गये और नागराज पूरी रात अपने फण से छतरी बनाकर उनको सुख देता रहा।
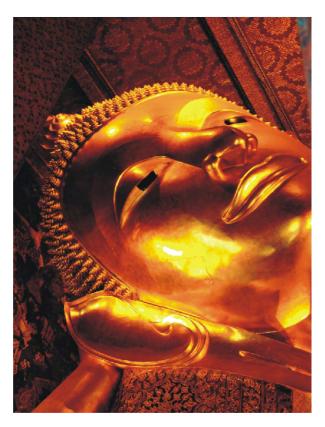
गाथा: एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एवं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।192।।

अर्थ: इन त्रिरत्नों की शरण में जाना सबसे सुरक्षित आश्रय है और यह सर्वश्रेष्ठ आश्रय भी है। एक बार जो व्यक्ति इन त्रिरत्नों की शरण में चला जाता है, वह सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।

सर्वोत्तम शरण में कैसे आयें?
अग्निदत्त की कथा

सुबह हुई। ऋषिजन को कौतूहल था कि जल्दी जानें कि रात्रि बेला में क्या-क्या हुआ । वे देखना चाहते थे कि स्थविर के प्राण-पखेरू अभी बचे हैं कि उड़ गए। वे जब रेत के पहाड़ के पास पहुँचे तो स्थविर को जीवित देखकर अति आश्चर्य हुआ। साथ ही साथ यह भी अनुभूति हुई कि यह आगन्तुक निश्चय ही कोई साधारण व्यक्ति न होकर कोई पहुँचा हुआ आदमी है। अत: हाथ जोड़कर उनके चारों ओर बैठ गए तथा शिष्टाचारवश पूछ बैठे, "नागराज ने रात्रि बेला में कोई कष्ट तो नहीं पहुँचाया ?" मोग्लान ने मुस्कुराते हुए कहा, "देख रहे हो नागराज को? मेरे ऊपर फण से छतरी बनाकर मुझे धूप से बचा रहा है।" तब ऋषियों ने आपस में कहा, "आश्चर्य ! अति आश्चर्य !! इस सीधे प्रतीत हो रहे श्रमण ने तो विषधर नागराज के अहंकार का दमन कर दिया।"

उसी समय तथागत वहाँ पधारे। उन्हें देखकर मोग्लान ने उन्हें सादर प्रणाम किया। ऋषियों को और आश्चर्य हुआ। "एक तो यह स्थविर स्वयं इतना शक्तिशाली है, ऊपर से यह स्वयं किसी दूसरे को प्रणाम कर रहा है।" वे अपनी उत्सुकता नहीं रोक सके और प्रश्न कर बैठे, "जिन्हें तुम प्रणाम कर रहे हो, क्या ये तुमसे भी श्रेष्ठ हैं?" "हाँ, ये तो सर्वशक्तिमान हैं, तथागत हैं, मेरे गुरू हैं। मैं तो इनका शिष्य मात्र हूँ।" शास्ता उस रेत के ढेर पर बैठ गए। ऋषिगण सुनिश्चित हो गये कि गुरू अपने शिष्य से निश्चय ही अधिक चमत्कारी होगा। यह विचार कर उन्होंने बुद्ध को सादर प्रणाम किया और उनकी ओर देखते हुए उन्हें घेर कर बैठ गए।

शास्ता ने देख लिया कि ज्ञान देने का सही समय आ गया है। अत: उन्होंने अग्निदत्त को सीधा संबोधित किया और पूछा, "अग्निदत्त ! तुम अपने शिष्यों को क्या शिक्षा देते हो ?" "भन्ते ! पर्वतों की शरण में जाओ, जंगलों की शरण में जाओ, वृक्षों की शरण में जाओ, बागीचों की शरण में जाओ आदि, आदि।" "उनकी शरण में जाकर तुम्हें मुक्ति मिल जायेगी ?" तथागत ने समझाया, "क्या तुम सही-सही समझते हो कि मात्र प्रकृति की शरण में जाने से मनुष्य को उसके कष्टों से मुक्ति मिल जायेगी ?" "हाँ श्रीमान्" "नहीं अग्निदत्त ! प्रकृति की शरण मात्र में जाने से दुःखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। प्रकृति सहायक हो सकती है पर असली कार्य तो आन्तरिक अवलोकन है। वह तो अपने अन्दर जाने से ही होगा। मात्र वाह्य क्रिया कलाप से अन्दर का बदलाव नहीं हो सकेगा। दूसरी ओर अगर कोई साधक बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में जाता है तो उसे ऐसा सुअवसर प्राप्त हो जाता है कि वह अपने दुःखों का कारण तथा उनसे मुक्ति का मार्ग खोज सके।" यह कहकर बुद्ध ने ये पाँच गाथायें उपदेश के रूप में सुनाईं।

गाथा दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधति।।193।।

अर्थः ज्ञानी पुरुष सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता है। वह अति दुर्लभ है। ऐसे धैर्यवान पुरुष का जहाँ जन्म होता है उस परिवार की सदैव वृद्धि होती रहती है।

बुद्ध का आगमन परम दुर्लभ है

स्थविर आनन्द के प्रश्न की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा बुद्ध ने स्थविर आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में कही थी ।

एक दिन आनन्द स्थविर अपने दैनिक साधना में बैठे हुए सोचने लगे "शास्ता ने यह तो समझा दिया कि श्रेष्ठ हाथी का जन्म षड्दन्तकुल या उपोसथकुल में, श्रेष्ठ घोड़े का जन्म सैन्धव कुल या वलाहक राजकुल में, श्रेष्ठ वृषभ का जन्म दक्षिणपथ में होता है आदि, आदि। पर उन्होंने यह नहीं बताया कि श्रेष्ठ पुरुष कहाँ उत्पन्न होते हैं।"

प्रश्न पूछने के उद्देश्य से आनन्द तथागत के पास पहुँचे और उन्हें सादर प्रणाम कर प्रश्न कर बैठे कि श्रेष्ठ पुरुष कहाँ जन्म लेते हैं।

तब बुद्ध ने समझाया, "श्रेष्ठ पुरुष सर्वत्र दुर्लभ हैं। वे तीन सौ योजन सीधे और नौ सौ योजन घेरे वाले मध्यदेश में ही उत्पन्न होते हैं। उत्तम पुरुष सर्वत्र जन्म नहीं लेते।"
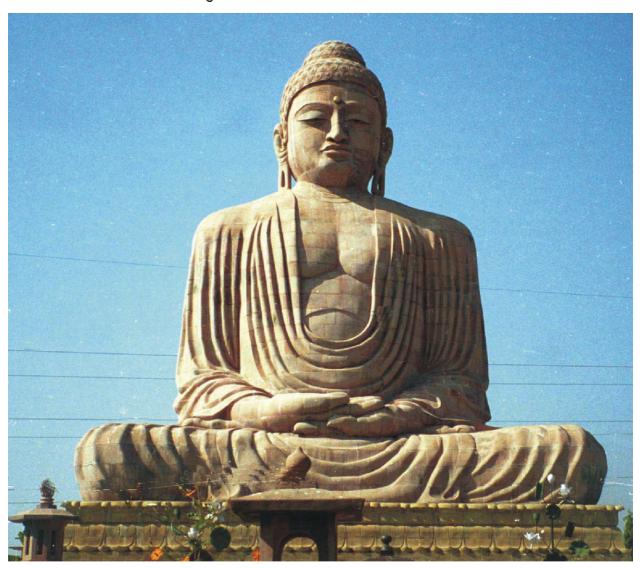
गाथाः सुखो बुद्धानं उप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो।।194।।

अर्थः इस संसार में बुद्ध का अवतरण सर्वश्रेष्ठ सुख है। उनके द्वारा दिये गए धर्मोपदेश का सुनना सुख है। इसी प्रकार संघ में एकतापूर्ण ढंग से प्रेम भाव रखकर धर्म साधना में लगे रहना भी सुख है।

सुखदायक क्या है?
अनेक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के जेतवन विहार में विराजते समय बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के वार्त्तालाप के सम्बन्ध में यह गाथा कही थी।

एक बार बहुत सारे भिक्षु इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि सर्वोच्च सुख क्या है। उन्होंने महसूस किया कि सुख का अर्थ भिन्न लोगों के लिए भिन्न था। तब उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजाओं के समान धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करना सुख है, कुछ लोगों को कामभोग में सुख मिलता है, कुछ लोगों के लिए सुस्वादु, रुचिकर भोजन करना ही सर्वश्रेष्ठ सुख है।"

भिक्षुओं के बीच जब यह चर्चा हो रही थी तब शास्ता वहाँ पधारे। चर्चा का विषय सुनने के बाद बुद्ध ने स्पष्ट किया, "जिस सुख की तुम लोग चर्चा कर रहे हो वह तुम्हें जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त नहीं कराते। संसार में बुद्ध का आगमन सुखदायी होता है, सद्धर्म का श्रवण सुखदायी होता है और संघ की एकता के अन्तर्गत एकतापूर्ण ढंग से तप करना सुखदायी होता है। "
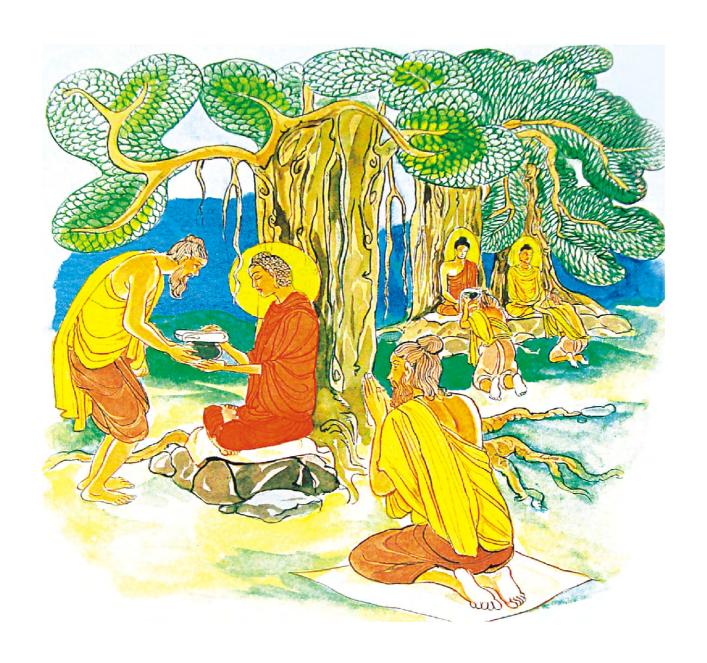
गाथा पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे।।195।।

अर्थ: पूज्य बुद्धों अथवा उनके श्रावकों, जो भवसागर के शोक भय को पार कर गये हैं।

पूजनीय की पूजा कीजिए
कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा

स्थान : तोदेयग्राम

एक बार श्रावस्ती से वाराणसी जाते समय बुद्ध ने ये दो गाथायें एक ब्राह्मण और कस्सप बुद्ध के स्वर्णिम चैत्य के संदर्भ में कही।

एक दिन बुद्ध अपने भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ श्रावस्ती से वाराणसी के लिए प्रस्थान कर गए। उस मार्ग में तोदेय ग्राम के निकट एक देवस्थान पहुँच कर वहीं रुक गये। बुद्ध ने वहां पास में एक किसान को खेती करते हुए देखा। उन्होंने आनन्द को भेजकर उस ब्राह्मण को बुला भेजा। वह ब्राह्मण अपने खेत से चलकर आया, शास्ता को प्रणाम न कर देवस्थान को प्रणाम किया और प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। शास्ता ने ब्राह्मण से पूछा, "ब्राह्मण! तुमने क्या सोचकर प्रणाम किया है ? "
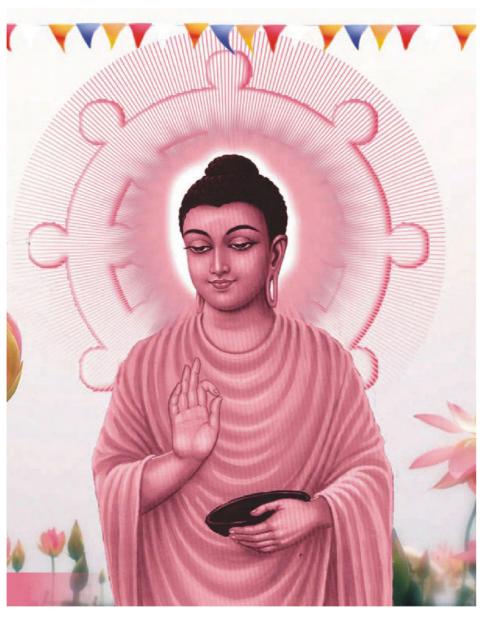
गाथा तो तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं सुड्खातुं इमेत्तमपि केनचि।।196।।

अर्थ: उनकी पूजा तथा ऐसे मुक्त पुरुषों की पूजा का परिणाम "इतना है" यह कहा नहीं जा सकता।

असीम फल देने वाले पुण्य का रहस्य
कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा

तब ब्राह्मण ने कहा, "हे गौतम ! यह मेरे कुल के देवता का स्थान है। अत: उन्हें श्रद्धा प्रकट करने के लिए मैंने प्रणाम किया।" "ब्राह्मण ! तुमने इस स्थान को जो प्रणाम किया वह बहुत ही उचित था क्योंकि यह स्थान पूजनीय है।" बुद्ध ने ऐसा कहकर उस ब्राह्मण को इस नेक कर्म के लिए साधुवाद दिया। और उसे इस प्रकार के सत्कर्म भविष्य में भी करने के लिए प्रोत्साहित किया।

उधर ब्राह्मण-बुद्ध संवाद सुनकर भिक्षुओं ने सोचा, "क्या सोचकर शास्ता ने ब्राह्मण के उस कर्म की सराहना की और भविष्य में भी शुभ कर्म करते रहने के लिए प्रोत्साहित किया ? " तब बुद्ध ने उनकी शंका मिटाने के लिए, अपने ऋद्धिबल से, काश्यप बुद्ध के योजन ऊँचे कनक चैत्य की तरह एक दूसरा स्वर्णचैत्य तैयार किया और उसे दिखाकर सबों से कहा, "ऐसे श्रेष्ठ जनों की पूजा करना उचित ही है।"

Dhammapada
Buddha Vagga
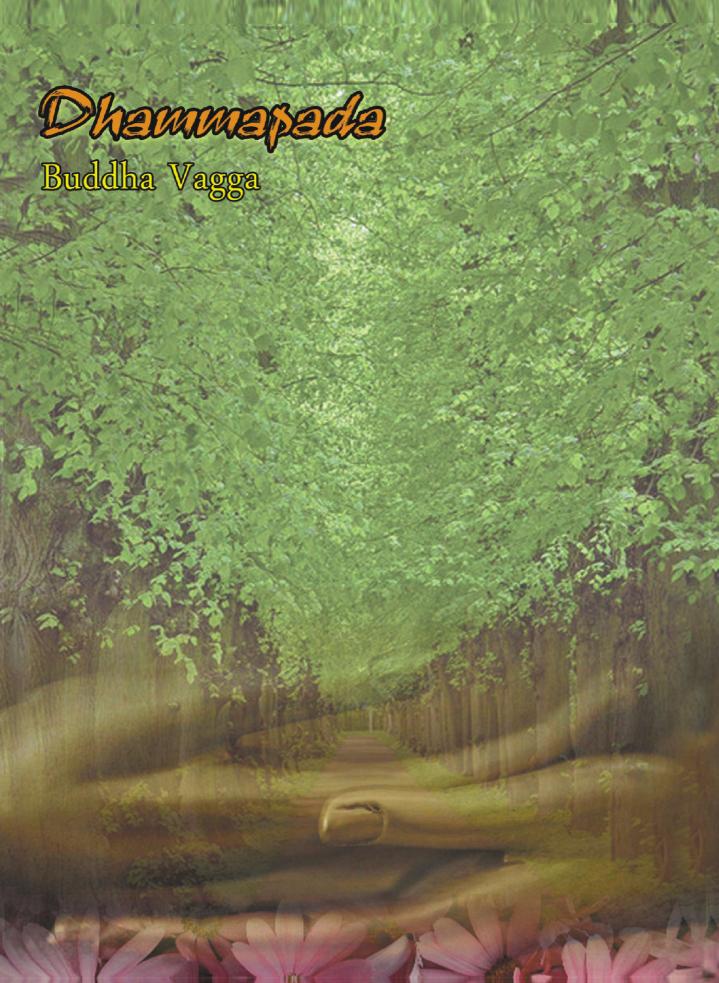
“Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and pepole would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share.”

**※ THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ※**

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA

南無阿彌陀佛

《印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第二冊：第八品 至 第十四品》
財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website: http://www.budaedu.org

Printed in Taiwan
3,000 copies; March 2010
IN072 - 8350

As this is a Dhamma text,
we request that it be treated with respect.
If you are finished with it,
please pass it on to others or
offer it to a monastery, school or public library.
Thanks for your co-operation.
Namo Amitabha!

《 印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第二冊：第八品 至 第十四品 》
財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel:886-2-23951198,Fax:886-2-23913415
Email:overseas@budaedu.org
Website: http://www.budaedu.org
This book is for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।
Printed in Taiwan
IN072